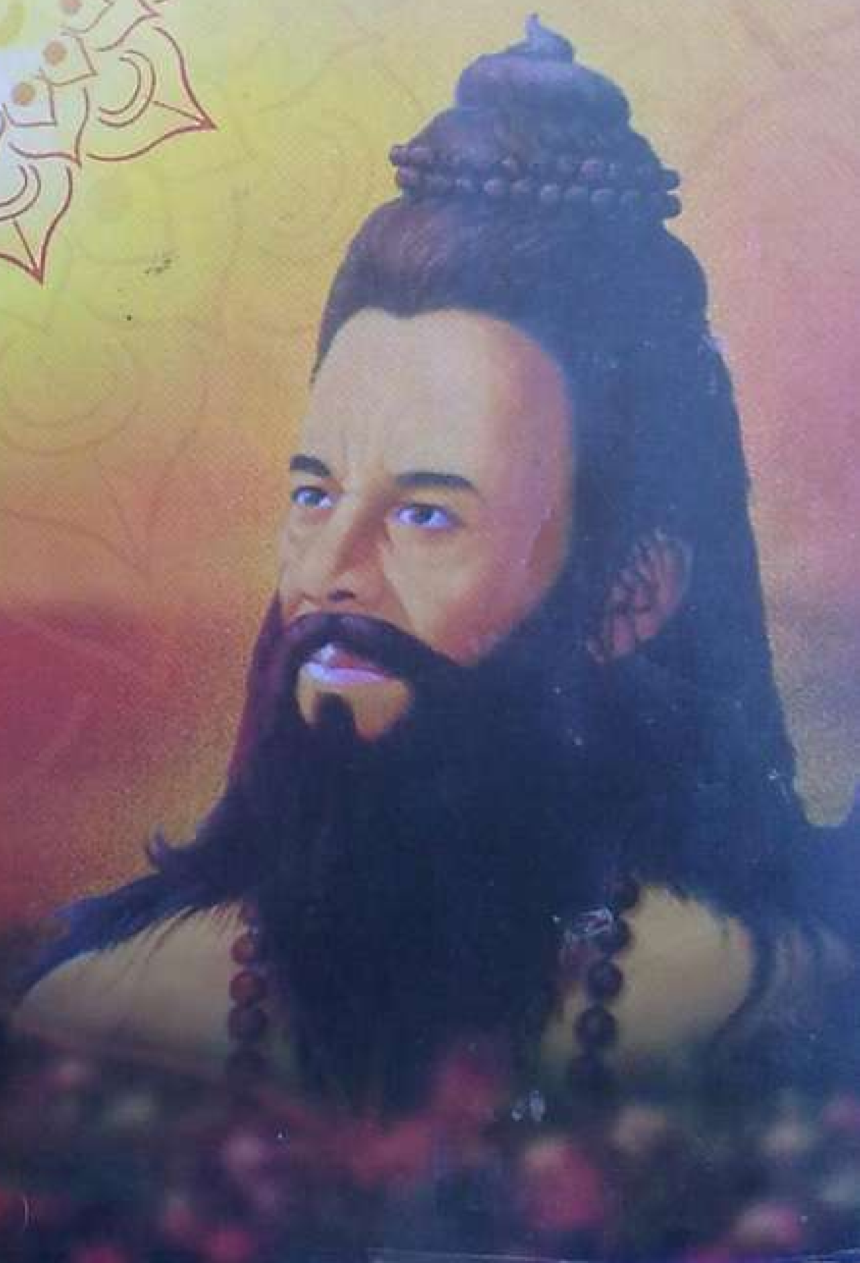
निखिलेश्वरानन्द स्तवन







पूज्य गुरूदेव
डॉ० नारायण दत श्रीमाली

श्री निखिलेश्वरानन्द पूजन

गुरु पूजन करने के बाद निखिल स्तवन के सस्वर पाठ करने अपने आप में ही सौभाग्य और सफलता का सूचक माना गया है। यों तो निखिल स्तवन का एक-एक श्लोक अपने आप में एक-एक मंत्र है, और उसके उच्चारण मात्र से ही साधक को फल प्राप्त होता है

साधक को चाहिए कि प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठकर स्नान आदि से निवृत्त होकर अपने पूजा कक्ष को शुद्ध कर लें, धोती तथा गुरु चादर धारण कर पूर्व या उत्तर की ओर मुख कर पवित्र आसन पर बैठ जाएं। सामने चौकी पर लाल या पीला वस्त्र बिछा कर गुरु चित्र स्थापित करें। अपने ललाट पर भस्म, चन्दन या कुंकुम का तिलक लगाएं। धूप तथा दीपक को अपने दाहिनी ओर प्रज्वलित करें तथा निम्न मंत्रों को बोलते हुए **तत्वाचमन** करें –

तत्वाचमन

ॐ निं आत्म तत्वं शोधयामि नमः।

ॐ खिं विद्या तत्वं शोधयामि नमः।

ॐ लं शिव तत्वं शोधयामि नमः।

निम्न मंत्र को बोलते हुए हाथ धो लें –

ॐ निं खिं लं ॐ – सर्व तत्वं शोधयामि नमः।

आत्म प्राण प्रतिष्ठा

अपने हृदय पर दाहिना हाथ रखें तथा उस परम शक्ति को अपने भीतर समाहित करते हुए निम्न मंत्र का पाठ करें –

ॐ आं ह्रीं क्रों मम प्राणा इह प्राणाः ।

ॐ आं ह्रीं क्रों मम जीव इह स्थितः ।

ॐ आं ह्रीं क्रों मम सर्वेन्द्रियाणि ।

ॐ आं ह्रीं क्रों मम वाङ्मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

विनियोग

दाहिने हाथ में जल लेकर निम्न मंत्र का उच्चारण करें ।

ॐ अस्य श्री निखिल स्तवन मंत्र पाठस्य ब्रह्माण्डेश्वर ऋषिः, शिखरिणी-त्रिष्टुप् छन्दः, निं बीजं, खिं शक्तिः, लं कीलकं, मम धर्मार्थ काम मोक्षार्थं गुरु सानिध्य प्राप्ति निमित्तं च अस्य पाठे विनियोगः । (जल भूमि पर छोड़ दें)

न्यास (ऋष्यादि)

निम्न मंत्र बोलते हुए विभिन्न अंगों को स्पर्श करें –

ॐ ब्रह्माण्डेश्वर ऋषये नमः ।	(शिरसि)
ॐ शिखरिणी त्रिष्टुप् छन्दसे नमः ।	(मुखे)
ॐ निखिलेश्वरानन्द देवतायै नमः ।	(हृदये)
ॐ निं बीजाय नमः ।	(गुह्ये)
ॐ खिं शक्तये नमः ।	(पादयोः)
ॐ लं कीलकाय नमः ।	(नाभौ)
विनियोगाय नमः ।	(सर्वाङ्गे) सिर से पैर

तक तथा पैर से सिर तक सभी अंगों को स्पर्श करें।

संकल्प

दाहिने हाथ में जल लेकर उसमें कुंकुम और अक्षत मिलाकर निम्न संदर्भ का उच्चारण करते हुए संकल्प करें –

ॐ स्वस्ति श्री भगवान श्री सच्चिदानन्दादि सिद्धाश्रम स्थित ऋषि परम्परा परिपूते, श्री श्वेत वाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुक मासे (माह) **अमुक वासरे** (दिन) **अमुकगोत्रीयः** (अपना गोत्र) **अमुक शर्माऽहं** (नाम) **अनेकजन्मकृत सकल अनिष्ट निवृत्ति पूर्वकं परम गुरु, परात्पर गुरु, पारमेष्ठि गुरु प्रीत्यर्थं निखिल स्तवनस्य पाठं अहं करिष्ये ।** (जल भूमि पर छोड़ें)

ध्यान

दोनों हाथ जोड़ कर खिले हुए कमल पुष्प पर विराजमान पूज्य गुरुदेव का ध्यान करें –

येनोदात्त तपः चयेन सततं संन्यस्तमाभूषितं,
ब्रह्मानन्द रसेन सिक्त मनसा शिष्याश्च संभाविताः ।
ब्रह्माण्डं नवराग रञ्जित वपुः हस्तामलकवद् धृतं,
सोऽयं भूति विभूषितः गुरुवरः निखिलेश्वरः पातु माम् ॥

सिद्धाश्रमोऽयं परिपूर्ण रूपं, सिद्धाश्रमोऽयं दिव्यं वरेण्यम् ।
न देवं न योगं न पूर्णं वरेण्यं, सिद्धाश्रमोऽयं प्रणम्यं नमामि ॥

गुरु चित्र के सामने छोटी सी थाली रखें, उसमें कुंकुम से स्वस्तिक बनाकर एक छोटा सा कलश जल भर कर रखें, एक पात्र में अक्षत भरकर कलश के ऊपर रख दें। **'निखिलेश्वरानन्द चैतन्य माला'** के सुमेरु को जल से स्नान कराकर कलश के ऊपर पात्र में स्थापित करें। उसके सुमेरु पर कुंकुम से तिलक करें तथा अक्षत अर्पित करें। तत्पश्चात् निम्न मुद्राओं द्वारा भगवद् पूज्यपाद निखिलेश्वरानन्द का आवाहन करें –

भगवत्पाद निखिलेश्वरानन्दः – इहागच्छ, इहागच्छ (आवाहनी मुद्रा)
भगवत्पाद निखिलेश्वरानन्दः – इह तिष्ठ, इह तिष्ठ (संस्थापनी मुद्रा)
भगवत्पाद निखिलेश्वरानन्दः – इह सन्निधेहि, इह सन्निधेहि
(सन्निरोधिनी मुद्रा)
भगवत्पाद निखिलेश्वरानन्दः – इह सन्निधत्स्व, इह सन्निधत्स्व
(सन्निधापिनी मुद्रा)
भगवत्पाद निखिलेश्वरानन्दः – इह सम्मुखो भव, इह सम्मुखो भव
(संमुखीकरण मुद्रा)

हाथ जोड़ कर –**'अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।'** बोल कर समस्त पूजन पूज्य सद्गुरुदेव को समर्पित करें, इसके बाद हाथ जोड़ते हुए ध्यान करें –

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यं ।
एकं नित्यं विमल मचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥

तत्पश्चात् दाहिने हाथ में पुष्प लेकर पूज्य गुरुदेव की साक्षात् उपस्थिति की

भावना करते हुए माला पर अर्पित करें तथा निम्न मंत्रों से पूजन आरम्भ करें –

ॐ ऐं ह्रीं गन्धं समर्पयामि श्री निखिलेश्वरानन्दाय गुरवे नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं सचन्दनं अक्षतं समर्पयामि श्री निखिलेश्वरानन्दाय गुरवे नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं धूपं आघ्रापयामि श्री निखिलेश्वरानन्दाय गुरवे नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं दीपं दर्शयामि श्री निखिलेश्वरानन्दाय गुरवे नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं नैवेद्यं निवेदयामि श्री निखिलेश्वरानन्दाय गुरवे नमः ।

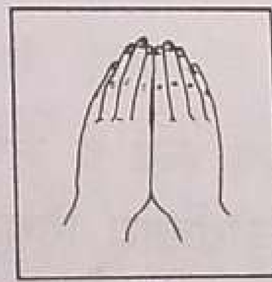
इसके बाद **निखिलेश्वरानन्द चैतन्य माला** को गले में धारण कर लें तथा आंख बन्द कर पांच मिनट तक पूर्ण तन्मयता से गुरु मंत्र का मानसिक जप करें –

// ॐ परम तत्वाय नारायणाय गुरुभ्यो नमः //

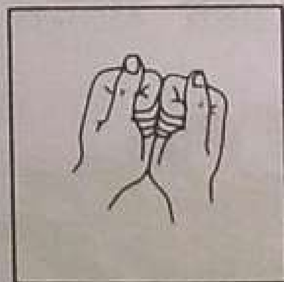
इसके पश्चात निखिलेश्वरानन्द स्तवन का पाठ आरम्भ करें। इस प्रकार नौ सप्ताह तक विधिपूर्वक पाठ करता है, तो उसे स्वयं ही अनेकों अनुभव होने लगते हैं।



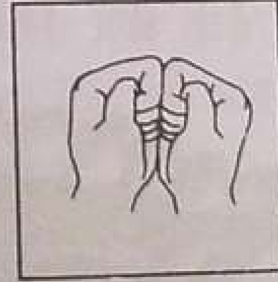
आवाहनी मुद्रा



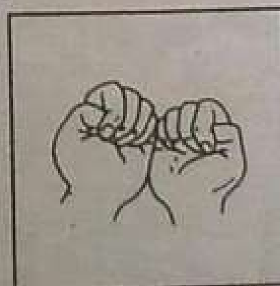
संस्थापनी मुद्रा



सन्निरोधिनी मुद्रा



सन्निधापिनी मुद्रा



संमुखीकरण मुद्रा



॥ १ ॥

महोस्त्वं रूपं च मपर विचिराक्षै गुरुवदैः
श्रियै दीर्घकाय विधुरम विदारै नव निधि ।
अतस्वा प्रीचार्य अथ प्रहर रूपै सद गुणै
गुंरौ र्देवं श्रेयं निखिल हृदयेश्च महपरौ ॥



मेरे परम आराध्य गुरुदेव! आप जैसा युग–पुरुष पहली बार ही इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, जिसकी चरण–धूलि को पाने के लिए उच्चकोटि के योगीजन भी व्यग्र रहते हैं।

आप पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देव हैं, जो चिन्त्य–अचिन्त्य, शुद्ध–बुद्ध, आत्म स्वरूप एवं पूर्णतादायक हैं, आप में और गणपति में बहुत साम्य है। वे गणपति अर्थात् गण समूह के अधिपति हैं और आप साधक अधिपति एवं शिष्याधिपति हैं। उनके पास तो मात्र "ऋद्धि" एवं "सिद्धि" दो ही शक्तियां हैं, पर आपके पास तो दैविक शक्तियां असीमित हैं। उनका विस्तार सीमित है, पर आपका विचरण, विकास, विस्तार असीमित हैं। आप अपने जीवन में जिस प्रकार से गतिशील रहे हैं, जिस प्रकार से आपने जीवन में कार्य किया है, उसकी तो कोई तुलना ही नहीं है।

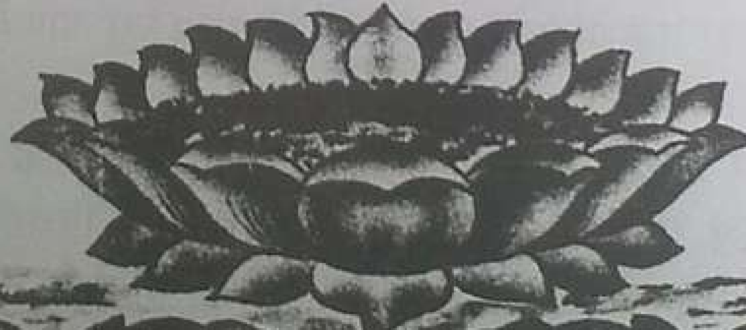
एक पर्वत श्रृंखला से दूसरी पर्वत श्रृंखला पर आपका गमन अबाध गति से रहा है, इस बात का मैं साक्षी हूं। जिस पहाड़ की चोटी पर आपके पांव पड़ जाते हैं, वह पहाड़ अपने आप में धन्य हो जाता है, वह चोटी अपने आप में पवित्र और दिव्य हो जाता है, क्योंकि मात्र एक स्थान से दूसरे स्थान ही नहीं, एक पर्वत से दूसरे पर्वत की चोटी ही नहीं, अपितु ब्रह्माण्ड का कोई ऐसा स्थान नहीं है जो आपके लिए दूर हो या जहां तक आपकी पहुंच नहीं हो तथा जो आपके श्री चरणों की धूलि से पवित्र नहीं हुआ हो।

आप अपने आप में सम्पूर्ण आदि विद्या के सिद्ध आचार्य हैं, इसीलिए आप समस्त ब्रह्माण्ड में निर्बाध गति से विचरण करने में सक्षम हैं। अतः ग्रन्थ लेखन से पूर्व सरस्वती, वाग्देवी और गणपति को तो मैं स्मरण करता ही हूं, पर आप तो **'निखिलेश्वर'** हैं, देव स्वरूप हैं, ब्रह्माण्ड स्वरूप हैं, मैं आपको भक्तिभाव से प्रणाम करता हुआ सदैव अपने रोम–रोम से **'निखिलेश्वर'** और **'गुरु'** शब्द का उच्चारण करता हुआ, पूर्णत्व, आपकी भक्ति एवं सामीप्यता प्राप्त करने का अभीप्सित हूं।।१।।



॥२॥

गुरु र्देवं देवं निखिल भव योगी सर परौ
परिपूर्णं ध्येयं विचरति अणिमादि श्रुयते ।
कलौ सन्यासं वै न च श्रिय परै र्न महपरि
अहो दिव्यात्मं त्वं परि वद च ब्रह्माण्ड नमन ॥



हे योगीराज निखिलेश्वरानंद जी! आप योगियों में सर्वश्रेष्ठ योगी और संन्यासियों में अद्वितीय संन्यासी हैं, योग के जितने भी क्षेत्र और आयाम हैं, आपने उनको पूर्णता के साथ समझा है और अपनी दिव्य देह पर इसका उपयोग किया है, इसीलिए अणिमादि सिद्धियां स्वतः आपके सामने विचरण करती रहती हैं।

संन्यास की जो मर्यादाएं हैं, उसकी जो ऊंचाई और विशेषताएं हैं, उनको आपने पूर्णता के साथ हम सब के सामने रख कर यह स्पष्ट किया है, कि इस क्षेत्र में किस प्रकार से पूर्णता पाई जा सकती है?

संन्यास को आपने पूर्णता के साथ जिया है, अब तक संन्यास एक रूढ़िग्रस्त, एक जड़, एक पत्थर की तरह बन गया था। संन्यास का तात्पर्य है – अपने मन में पूर्णता प्राप्त करना, इसके लिए बाहरी आडम्बर, बाहरी विचार, बाहरी क्रियाकलाप जीवन में कोई चेतना नहीं देते; इसीलिए आज आपने संन्यास की जो परिभाषा स्थापित की है, संन्यास को जिस प्रकार से पूर्णता दी है, वह आपके ही योग्य है।

आज समस्त भारतवर्ष के संन्यासी उसी चेतना का, उन्हीं नियमों का पालन करते हुए यह एहसास करने लगे हैं, कि वास्तव में ही जीवन जड़ नहीं है, संन्यास अपने आप में रुंधा हुआ सरोवर नहीं अपितु बहती हुई गंगा है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अवगाहन करने की छूट है।

जीवन के मूल्यों को आपने पूर्णता के साथ सामने रखा है, तो जीवन की ऊंचाइयों को भी स्पर्श कर आप अपने आप में अद्वितीय बन गए हैं। आने वाले कई सौ वर्षों तक कोई भी संन्यासी या योगी आपकी ऊंचाई तक नहीं पहुंच सकेगा।

हम जब भी आपको देखते हैं, तो ऐसा लगता है, कि एक दिव्यात्मा ब्रह्माण्ड से हम पृथ्वीवासियों के सामने अवतरित हुई है, ऐसा लगता है, कि जैसे कोई देवदूत इस भौतिकमय विश्व में एक सन्तुलन स्थापित करने के लिए, एक प्रकाश बिखेरने के लिए उपस्थित हुआ है। हम सब सिद्धाश्रम के योगी आपको बार–बार नमन करते हैं।।२।।



॥ ३ ॥

सहौ चिन्त्यं देव भवति नमनः वै निखिल यो
सहौ देवं आत्म्यं अवतरित भूमि ग्रह इति ।
दिवौ सिद्धाश्रम वै गति इति भवेत्स्पंदित महो
महम् देवं व्यग्र इहमिद सदौ पूर्ण गति वै ॥



हे योगिराज! आप सही अर्थों में सिद्धाश्रम के प्राण स्वरूप हैं। जिस प्रकार से बिना प्राणों के देह का कोई अस्तित्व नहीं रहता, जिस प्रकार से बिना आत्मा के शरीर स्पंदित नहीं होता, उसी प्रकार आपके बिना सिद्धाश्रम की कल्पना करना भी व्यर्थ है। सिद्धाश्रम निश्चय ही अद्वितीय सिद्ध स्थली है।

यह सिद्धाश्रम, जो हजारों–लाखों वर्षों से गतिशील तो है, किन्तु सुनसान सा पड़ा हुआ था, जहां उच्चकोटि के योगी तपस्या में रत थे, जहां न किसी प्रकार की कोई हलचल थी, न कोई स्पन्दन था, ऐसा लग रहा था, जैसे यह सिद्धाश्रम नहीं अपितु कोई श्मशान स्थली हो, मगर आपने इस सिद्धाश्रम का पूर्ण परिवर्तन किया।

यद्यपि आपने जितना संघर्ष, जितनी वेदना झेली, जितना विरोध हुआ, जिस दृढ़ता और क्षमता के साथ आपने इन सबको झेला है, वह हमारे लिए एक आश्चर्यजनक बात है।

आज सिद्धाश्रम के सभी योगी और संन्यासी इस बात को स्वीकार करते हैं, कि जो सिद्धाश्रम निष्प्राण, निर्जीव और निस्पन्द था, आपने उसमें चेतना दी, आपने सही अर्थों में उसे सिद्धाश्रम बनाया, आपने सही अर्थों में यह एहसास कराया, कि ऊर्जस्विता जीवन को प्रवाह प्रदान करती है। आपने सिद्धाश्रम को इस योग्य बनाया, कि आज देवता भी उसमें आने के लिए उत्सुक रहते हैं।

आपने उसके निष्प्राण शरीर में प्राण स्पंदित किए हैं, उस सुनसान स्थल को चेतना युक्त और ऊर्जस्विता युक्त बनाया है। अब इस सिद्धाश्रम में गति है, स्पन्दन है, हलचल है, मस्ती है, तरंग है, छलछलाहट है, जीवन्तता है, अब इस सिद्धाश्रम में एक प्रवाह है। जिससे इसकी शोभा और इसकी प्राणश्चेतना अत्यधिक मुखरित हो उठी है, जहां देवता भी आने के लिए प्रयत्नशील हैं, और जहां की माटी को वे अपने सिर से लगाने के लिए व्यग्र हैं, क्योंकि यह सारा सिद्धाश्रम आपके आने से सुरभित, सुगन्धित और देवताओं के लिए भी अद्वितीय बन गया है।।3।।



॥४॥

निखिल त्वं प्राण त्वं भवति भवस्पर्श महमहो
महत् सिद्धि स्पर्श नव भवति नृत्यं करति यः।
महोद् योगी स्पर्श चरण कण पूर्ण सह महौ
ऋषि साक्ष्यं पूर्ण भवति महतं चंदन इति॥



हे सिद्धाश्रम के प्राणस्विता युक्त तेजस्वी महामानव! इस सिद्धाश्रम में सैकड़ों–हजारों वर्षों की आयु प्राप्त योगी इस समय भी साधना एवं तपस्यारत हैं, परन्तु फिर भी वे आपकी ऊंचाई को प्राप्त नहीं कर पाये हैं। आपने जिन सिद्धियों को प्राप्त किया है, वहां तक पहुंचने के लिए अभी इन योगियों और तपस्वियों को सैकड़ों वर्ष लग जाएंगे। आप निश्चय ही अद्वितीय **"सिद्धि पुरुष"** हैं, तभी तो हजारों–हजारों शक्तियां और सिद्धियां आपके सामने नृत्य करती हैं।

मैं ही नहीं, अपितु सैकड़ों संन्यासियों का यह अभिमत रहा है, कि आप से मिलने पर तो उनके शरीर से सुगन्ध प्रवाहित होती ही है, मगर आपके दर्शन मात्र से ही उनमें वे वृत्तियां जाग्रत होने लग जाती हैं; जो जीवन को प्राणवान और ऊर्जावान बना देती हैं, जो एक बार भी आपसे मिल लेता है, अपने आप ही उसकी कुण्डलिनी जाग्रत होने लग जाती है, जो एक बार भी आपके दर्शन कर लेता है, अपने आप ही उसमें एक प्रकार की दिव्य चेतना स्पन्दित होने लग जाती है।

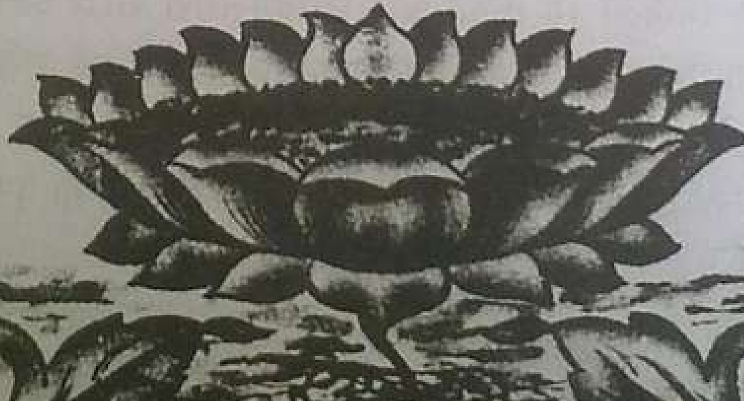
मैंने यह भी अनुभव किया कि कई वर्षों तक साधनाएं करने के बाद भी जब उन संन्यासियों को सफलता नहीं मिल रही थी, तब उन लोगों ने आपकी चरण–धूलि को चन्दन की तरह ललाट पर लगाया, उसी क्षण एक बिजली सी कौंधी और उनका सारा शरीर झनझना गया, उसी क्षण ऐसा लगा कि जैसे एक विद्युत प्रवाह सा पूरे शरीर में प्रवेश कर गया हो, पूरा शरीर एक अद्वितीय ऊर्जा से भर गया, और जिन साधनाओं में सिद्धि नहीं मिल रही थी, उन साधनाओं में भी पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई।

आपके स्पर्श से ही यह अद्वितीयता प्राप्त हो सकती है, तो आप जिस ऊंचाई पर हैं, हम हजारों साल की तपस्या करके भी आपके जीवन की पूर्णता को और चैतन्यता को प्राप्त नहीं कर सकते, यदि उसका क्षणांश भी हमें प्राप्त हो जाय, तब भी हम अपने जीवन को धन्य और सौभाग्यशाली समझ लेंगे।। ४।।



॥ ५॥

गुरौ रूपं देव त्व व च गुण गानं श्रिय इति
नमौ सिद्धयोगा सकल गुणगान त्वव इति ।
त्वदि कल्पवृक्षौ गुण ग्रहित नैत्र हिरणयो
त्वदै गानं पूर्ण गुरुवर भवेत्पूर्ण श्रियतः ॥



हे अनन्त श्री! सिद्धयोगा झील की प्रत्येक लहर आपके चरण प्रक्षालन के लिए व्यग्र है, सिद्धयोगा झील पर आपका नाम मधुरता के साथ स्पन्दित है, क्योंकि आपने इस निर्मल सिद्धयोगा झील को समस्त साधकों और योगियों के लिए व्यवहार करने योग्य बनाया है; सिद्धयोगा झील का पावन जल निरन्तर अपने होठों से आपका ही गुणगान करता रहता है।

जब वायु कल्पवृक्ष को स्पर्श करती हुई बहती है, तो ऐसा लगता है, कि जैसे देवदूत आपके सम्मान में खड़े होकर श्लोक उच्चरित कर रहे हों। सिद्धाश्रम की माटी के प्रत्येक कण पर आपका गुणगान अंकित है। सही अर्थों में आप सिद्धाश्रम की चेतना हैं, धड़कन हैं और इसकी पूर्णता के आधार हैं।

आपके आते ही यहां की सारी धरती अपने आप में तेजस्विता युक्त बन जाती है। सारे साधक, सारे संन्यासी, सारे योगी अपने आप में बालकों की तरह इठलाते, मचलते, कूदते, झूमते हुए घूमने लगते हैं, जैसे कि उनमें प्राणों का संचार हो गया हो।

हिरण शावक दौड़कर आपके चारों ओर घूमने लगते हैं, पक्षियों की चहचहाहट बढ़ जाती है, कोयल मीठे स्वर में गायन करने लग जाती है।

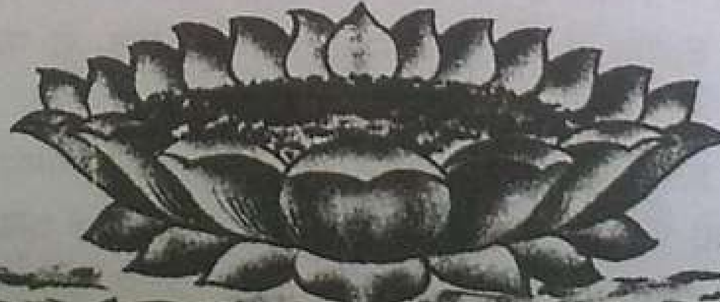
यज्ञ करते हुए योगियों, संन्यासियों को अग्नि धूम्र में देवताओं के दर्शन होने लग जाते हैं। ऐसा लगता है, कि जैसे प्रत्येक कण स्पन्दित हो उठा हो, प्रत्येक माटी की क्षणिकता पूर्णता युक्त हो गई हो, सारे वृक्ष झूमकर आपका स्तुतिगान कर रहे हों।

– और मुझे तो ऐसा लगता है, कि आपके आगमन पर देवता स्वयं उन वृक्षों में गतिशील होकर, आपके दर्शन करके धन्य हो उठते हैं, और झुक कर आपको भक्तिभाव से प्रणाम करके अपने जीवन की पूर्णता को अनुभव करते हैं, कि हम सभी में आपका ही जीवन है, आपकी ही विशेषता है, आपकी ही श्रेष्ठता है, आपकी ही सर्वोच्चता है और आपकी ही महानता है।। ५।।



॥६॥

महौ सिद्धाश्रम वै न च भवत रोग श्लय इति
दिवौ सूर्य श्रेण लिखतु गुण पूर्णत्व इति च।
शशि भूमौऽमृत्वं त्व व गुण इवौ प्राप्त इति च
"निखिलभूमौ" व्यक्तं भव च औत्सुक्य सुर वदै॥



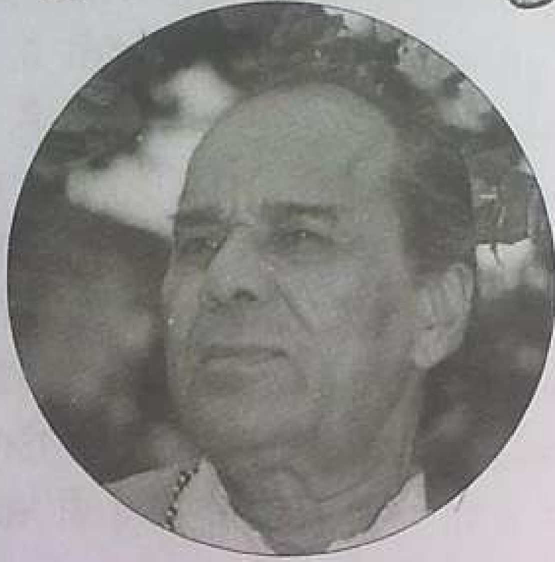
सिद्धाश्रम में न सर्दी है न गर्मी, न व्याकुलता है न चिन्ता, न ही व्यग्रता है, और यह सब आपके आने से ही सम्भव हो सका है। यहां के प्रभात के ललाट पर आपके हजारों–हजारों गुणों की प्रशस्तियां लिखी हुई साफ–साफ दिखाई देती हैं, मध्याह्न को जब सूर्य की क़िरणें इस धरती से अठखेलियां करती हैं, तब ऐसा लगता है, कि ये किरणें आपको देख कर नृत्य कर रही हों; रात्रि में जब भगवान चन्द्र अपने पूर्ण यौवन के साथ उदित होकर पूरे सिद्धाश्रम में विचरण करते हैं; चिन्ता–रहित, बाधा–रहित और वृद्धता–रहित यह भूमि सही अर्थों में **''निखिलेश्वरानन्द भूमि''** कही जा सकती है, क्योंकि आपने इस सिद्धाश्रम को देवताओं के लिए भी ईर्ष्या युक्त बना दिया है और वे भी कुछ क्षणों के लिए ही सही, यहां आने के लिए व्यग्र और उत्सुक हैं।

मैंने एक–दो बार ही नहीं, सैकड़ों बार यह अनुभव किया है, कि न जाने आपके व्यक्तित्व में ऐसी क्या विशेषता है?

जब आप इस धरती पर पांव रखते हैं, तो चारों तरफ अष्टगंध सी प्रवाहित होने लग जाती है और उस अष्टगंध के प्रवाह से ही यह अनुभव होने लग जाता है, कि कोई देवदूत आ रहा है।

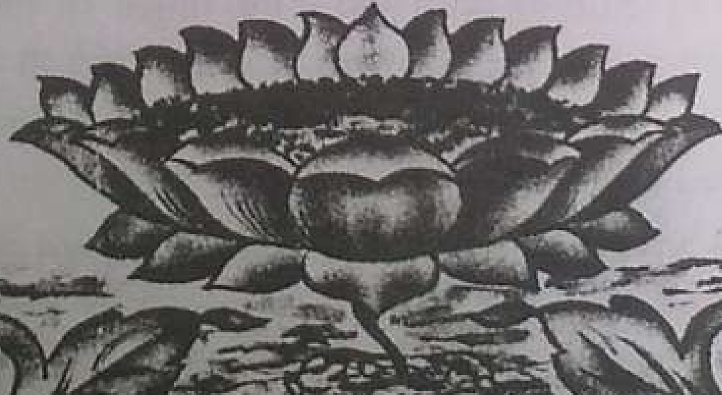
'देवदूत' तो अपने आप में बहुत छोटा–सा शब्द है, स्वयं देवता आ रहे हैं, किन्तु 'देवता' भी अपने आप में एक मामूली सा शब्द है, क्योंकि देवता तो स्वयं वृक्षों के रूप में, पत्तियों के रूप में, पेड़ों के रूप में, जल के रूप में, जिस रूप में भी वे हैं, उस रूप में आकर आपका अभिनन्दन करने के लिए मचल उठते हैं।

मैंने अनुभव किया है, कि जब आपका सिद्धाश्रम में प्रवेश होता है, तो वे साकार हो उठते हैं, आपकी प्रत्यक्ष उपस्थिति से पूरा सिद्धाश्रम नृत्यमय हो जाता है, उल्लासमय हो जाता है। सिद्धाश्रम की धरती स्वयं अभिनन्दित हो उठती है वहां की मिट्टी आपके चरणों को स्पर्श करने के लिए व्यग्र दिखाई देती है। वास्तव में ही 'आप' और 'सिद्धाश्रम' अपने आप में पर्यायवाची शब्द बन गये हैं।।६।।



॥ ७॥

भवोत्रूप भव्य रचयिति विधाता महकरौ
अहत् तेजस्वी श्रु भवति करुणःनैत्र इति वै ।
महेद् वक्ष रूपं जलधि व सतारं बल महो
अहो कामः विश्म श्रुत युत इति पूर्णद महो ॥



हे गुरुदेव! आपका स्वरूप अपने आप में अत्यन्त भव्य और दिव्य है। विधाता ने स्वयं नवीन व्यवस्था से आपका निर्माण किया होगा, अत्यन्त तेजस्वी और भव्य मुखमण्डल, उस पर पैनी, सतर्क और सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न नेत्रों में अथाह करुणा का सागर, होठों पर देवताओं को भी लजाने वाली मुस्कराहट, भगवान विष्णु के पांचजन्य शंख की तरह ग्रीवा, उमड़ते हुए विशाल जलधि की तरह आपका भव्य और उन्नत वक्षस्थल, घुटनों को स्पर्श करते हुए हस्ति–सुण्ड की तरह दो बलवान भुजाएं और देवताओं की तरह लम्बा सौन्दर्यशाली अद्‌भुत व्यक्तित्व, जिसमें बल इतना, कि एक ठोकर से पेड़ को जड़ से उखाड़ कर फेंक दे; हाथों में क्षमता इतनी, कि दो व्याघ्रों को पीठ से पकड़ कर हवा में उछाल दे; और साहस इतना, कि जिसे सुन कर हिमालय भी दांतों तले उंगली दबा ले।

ऐसे सौन्दर्य को देखकर कामदेव स्वयं यह कहने के लिए विवश हुआ है, कि आप सही अर्थों में पुरुष हैं, आप सही अर्थों में सौन्दर्य के साकार रूप हैं, आप सही अर्थों में पौरुष की पूर्णता हैं।

अगर सम्पूर्ण व्यक्तित्व का आकलन किया जाय, तो वह केवल **"निखिलेश्वरानन्द जी"** का व्यक्तित्व ही है, उनको देखकर विधाता स्वयं कलम लेकर लिखने लग जाता है, कि सम्पूर्ण पुरुषत्व क्या होता है? एक–एक अंग अपने आप में एक तेजी, एक क्षमता, एक तेजस्विता, एक भव्यता, एक देदीप्यता लिये है, एक–एक अंग सांचे में ढला हुआ है।

यदि किसी को "स्वामी निखिलेश्वरानंद जी" के दिव्य शरीर का दर्शन हो जाता है, फिर उसके समान सौभाग्यशाली तो देवता भी नहीं होते, क्योंकि मात्र उनका शरीर ही अपने आप में पूर्णता का परिचायक है, पूर्णता ही नहीं, सम्पूर्णता का आगार है, और जब आपके शरीर को देखता हूं, तो मैं ही नहीं अपितु सैकड़ों साधक, साधिकाएं और अप्सराएं ठगी सी खड़ी रह जाती हैं, उनकी आंखें तक नहीं झपकतीं, वे जड़वत् खड़ी होकर केवल टुकुर–टुकुर निहारती ही रहती हैं।।७।।



॥८॥

नवोढ़ा सौन्दर्य प्रभु च प्रतुरेक महदधि
महत् देव यक्ष सुरगण प्रहेचच छुक श्रुति ।
यदि लेंख्यं साक्ष्य भवत मह अश्रु प्रवमहो
र्व मूर्च्छत्वं वै न कमल भव श्लष्म प्रचुरति ॥



हे प्रभु! जिन सौन्दर्य और यौवन भार से लदी हुई अप्सराओं को देखने के लिए मनुष्य तो क्या यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और देवता तक भी उत्सुक रहते हैं, वे अत्यन्त सलज्ज अप्सराएं जब हाथ बांधे उस रास्ते पर घंटों खड़ी हुई दिखाई देती हैं, जिस रास्ते पर आप आने वाले हों, तो उन्हें देख कर मैं विस्मय से ओत–प्रोत हो जाता हूं, कि अवश्य ही आपके व्यक्तित्व और सौन्दर्य में कुछ ऐसा है, जो उन्हें घंटों खड़ा रहने के लिए बाध्य कर देता है।

और जब आप एक क्षण के लिए उस रास्ते से निकल जाते हैं, तो वे अप्सराएं उस स्थान की धूलि अपनी मांग में भर कर जो कुछ नहीं कहना होता है, वह भी कह बैठती हैं। उनकी आंखें मूक निमन्त्रण का एक पुंज बन जाती हैं, उनका सारा शरीर आपकी सन्निधि प्राप्त करने का आकांक्षी हो जाता है।

एक क्षण के लिए भी जब आप मूक मुस्कराहट के साथ निमन्त्रण देती हुई आंखों के साथ उनको निहार लेते हैं, तो चार महीने तक वे झूमती रहती हैं, मचलती रहती हैं, और दूसरी अप्सराएं उसके भाग्य से ईर्ष्या करती हैं।

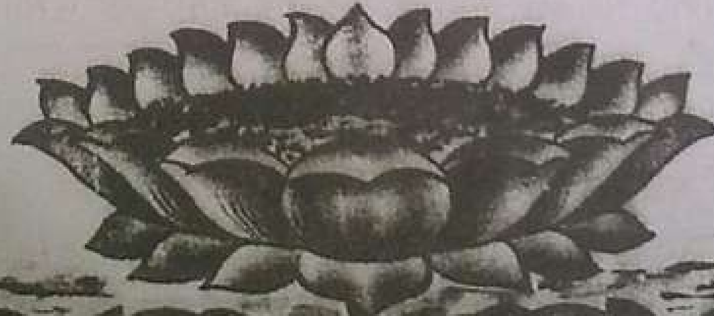
जब मात्र देखने से ही यह स्थिति बन जाती है, तो जिनकी बांहों में आप होते हैं, उनकी तुलना तो करोड़ों–करोड़ों सूर्य, करोड़ों–करोड़ों देवता भी नहीं कर सकते। यदि किसी के पास आप क्षण भर के लिए भी बैठ जाते हैं, तो कई वर्षों तक उसके शरीर से एक सुगन्ध सी प्रवाहित होती रहती है।

अप्सराएं तो आपको निहारने के लिए, आपको देखने के लिए ही व्यग्र और मचलती रहती हैं, और मैं जब उनके मन की भाषा को पढ़ता हूं, तो उनके मन में एक ही भाव होता है, कि यह पुरुष सौन्दर्य, यह देवात्मा, यह अद्वितीय व्यक्तित्व एक क्षण भर के लिए ही सही, उन्हें देख ले, उनके शरीर को स्पर्श कर ले। वास्तव में आपका शरीर है ही इतना अद्वितीय कि वे आपके आने की प्रतीक्षा करती हुई, आपको लेश मात्र देख कर ही धन्य हो जाती हैं।।८।।



॥ ९ ॥

गुरौ वैं शान्त त्वं जलधि वपुषारा श्रयतु च
भवेत्क्रोधोत्रूपं प्रहर प्रव दावाग्नि नयतः ।
अहो सर्वोतृज्ञानं करुण प्रभ स्नेह प्रचरुता
नहो सामर्थ्यं वै श्रियत निखिलेश्म प्रणतु च ॥



हे प्रभु! जिस प्रकार समुद्र ऊपर से शान्त दिखाई देता है मगर उसके अन्दर अत्यन्त हलचल और अग्नि होती है, ठीक उसी प्रकार ऊपर से आप भी अत्यन्त शान्त दिखाई देते हैं। परन्तु क्रोधित हो जाने पर भयंकर तूफान की तरह सबको कम्पायमान कर देते हैं आपकी एक आंख में करुणा, तो दूसरी आंख में क्रोध की ज्वाला धधकती रहती है।

जब आप प्रसन्न होते हैं, तो अपना सब कुछ दे डालने में किंचित मात्र भी हिचक नहीं करते, परन्तु क्रोधित होने पर आप उसका सर्वनाश करने की भी सामर्थ्य रखते हैं, यही तो पौरुष का लक्षण है, यही तो धीरता और वीरता का सामंजस्य है।

यद्यपि आप क्रोध को अपने अन्दर दबाये हुए रहते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार पर्वत ज्वालामुखी को अपने अन्दर दबाये हुए रहता है; परन्तु जब आप क्रोध करने लगते हैं, तो सारा सिद्धाश्रम हिलने लग जाता है, ऐसा लगता है कि जैसे भूकम्प आ गया हो, और पूरी धरा कम्पायमान हो गयी हो, किसी को कुछ होश नहीं रहता, ऊंचे से ऊंचा योगी भी एक ओर छिप करके, दुबक करके बैठ जाता है, इस क्षण आपके तेज को देखने की क्षमता किसी में नहीं होती है। उस क्षण आपका रूप अत्यन्त प्रखर होता है।

मगर आप जितने क्रोधमय हैं, उतने ही शांत, दयावान एवं करुणावान भी हैं। आपके क्रोध के सामने महाकाल भी नहीं टिक सकता और आपके प्रेम के सामने भगवान विष्णु भी नहीं टिक सकते।

सही अर्थों में आप देवज्ञ हैं, चेतनामय हैं, पूर्णरूप से ब्रह्म हैं, इसीलिए हम सभी सिद्धाश्रमवासी आप जैसा पौरुष का शतांश प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं और इसी को तो **"पुरुषार्थ"** कहा गया है।

एक व्यक्तित्व में जितने गुण होने चाहिए – वीरता, धीरता, गम्भीरता, सत्य, दया, ममता, करुणा, प्रेम, स्नेह, शत्रुमर्दन, प्रचण्डता, दुर्धर्षता और तूफानों से टक्कर लेने की क्षमता – ये सभी गुण स्वभावतः आप में समाविष्ट हैं, आप पूर्ण है, मैं आपको साष्टाग प्रणाम करता हूं।। ९।।



॥१०॥

हरिस्ते शान्तत्वं भवत जन कल्याण इति वै
समस्त ब्रह्माण्ड ज्ञनद वद श्रेयं परित च ।
ऋषिर्वै हुंकार क्वच क्वद च शास्त्रार्थ करतुं
अहत् हुंकारैर्ण श्लथ भवतु योगीर्न श्रियतः ॥



सिद्धाश्रम अपने आप में शान्त था और यहां स्थित तपस्वी आत्मकेन्द्रित। पहली बार आपने उनके ज्ञान को, उनके पौरुष को और उनके जीवन को ललकारने का दुस्साहस किया, पहली बार आपने उनके 'अहं' को चोट दी, पहली बार आपने उनको बताया, कि केवल एक स्थान पर बैठ कर साधना या तपस्या करने से कुछ नहीं होता; अपितु समाज में जाकर अपने ज्ञान के सूर्य की रश्मियां फैलाने में ही पूर्णता है। 'स्व' को विकसित करने की अपेक्षा समस्त ब्रह्माण्ड को और उसमें स्थित प्राणियों को विकसित करने से ही पूर्णता और श्रेयता प्राप्त हो सकती है।

पहली बार आपने विद्याग्नि ऋषि के प्रचण्ड क्रोध का सामना किया, पहली बार सुश्रवा, मुद्गल आदि ऋषियों से शास्त्रार्थ कर उनके अहं को परास्त किया, और पहली बार आपने सिद्धाश्रम में डंके की चोट पर ऐलान किया – "जिस किसी में भी अहं हो और जो भी योगी, संन्यासी, सिद्ध किसी भी स्थान पर, किसी भी विषय पर, कभी भी शास्त्रार्थ करना चाहे, मैं तैयार हूं।"

पर आपकी इस हुंकार नें उनको अपनी–अपनी कुटियाओं में दुबक कर बैठने के लिए विवश कर दिया।

नतमस्तक होना और पराजित होना तो शायद आपने सीखा ही नहीं। जीवन में जो कुछ भी किया, पूर्ण पौरुषता के साथ किया। आपने अपने ज्ञान से, अपनी चेतना से इस बात को समझा कर पूरे सिद्धाश्रम में यह स्पष्ट कर दिया, कि आप से टक्कर लेने वाला कोई दूसरा योगी, यति या संन्यासी पैदा ही नहीं हुआ, और अभी हजार वर्ष तक भी कोई पैदा नहीं हो पाएगा।

एक प्रकार से देखा जाय, तो भारतीय ज्ञान को पूर्णता के साथ स्पष्ट करने की क्रिया केवल आप ही के माध्यम से हुई है। यदि वेद को कोई आकार दे दिया जाय, तो वह केवल आप हैं। आप स्वयं वेदमय हैं, वेद आप में समाहित हैं, और आपको देखकर ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद की साकार प्रतिमा आंखों के सामने स्पष्ट हो जाती है।। १०।।



॥ ११ ॥

महो सिद्धायोगा न च भवत सौख्यं पर परं
वदेत् व्याघ्र रूपं स्वति निवसतः पूर्ण मदनै ।
अहो क्रोधाग्नि वैं प्रखर हिम शैले वदतु न
नवोढ़ा सौन्दर्य सिद जलधि हास्य व इद नः ॥



हे गुरुदेव! आज सिद्धयोगा झील का जो सौन्दर्य है, वह आपकी वजह से ही है, अन्यथा यह झील उदास और बेचैन दृष्टि से ताकती रहती थी; क्योंकि सिद्धयोगा झील में कोई पांव तक नहीं रख सकता था, यह सिद्धाश्रम की परम्परा थी, परन्तु आप तो व्यर्थ की परम्पराओं को तोड़ने वाले व्यक्तित्व हैं, आपने सिंह गर्जना की, कि कोई भी साधक या साधिका, संन्यासी या संन्यासिनी झील में स्नान कर सकते हैं; चुहल, हंसी और किलोल कर सकते हैं।

और जब ऐसा हुआ, तो पूरे सिद्धाश्रम में एक हलचल, एक तूफान सा व्याप्त हो गया। पर आप अपने निश्चय पर अडिग थे, सैकड़ों ऋषियों और योगियों की क्रोधाग्नि का सामना करते हुए आपने जो कहा, उसे मान्यता दी गई।

तभी तो आज सिद्धयोगा झील हर क्षण मुस्कराहट समेटे हुए नववधू की तरह सुन्दरता से ओत–प्रोत दिखाई देती है, आपकी वजह से ही तो उसका पूर्ण श्रृंगार हुआ है। उसका जल इतना स्वच्छ, निर्मल, पवित्र और अद्वितीय है, कि केवल उसका स्पर्श करने से ही पूरे शरीर में एक हलचल, एक हिलोर सी पैदा हो जाती है।

आज संन्यासी एवं साधक सिद्धयोगा झील के तट पर बैठकर उन लहरों का नर्तन देखते हैं, उन लहरों का संगीत सुनते हैं, तो उन्हें ऐसा लगता है, कि ब्रह्माण्ड में यदि कोई अद्वितीय स्थल है, तो वह केवल सिद्धयोगा झील ही है।

उस समय का वातावरण तो अपने आप में अद्वितीय बन जाता है, जब अप्सराएं स्वतः ही सिद्धयोगा झील को देखकर नर्तन करने लग जाती हैं, सिद्ध योगी अपनी साधनाओं को भूल करके नृत्यमय हो उठते हैं, और सम्पूर्ण वातावरण सुगन्धमय, नृत्यमय, आनन्दमय, श्रेष्ठ, अद्वितीय और अनुपम बन जाता है।

यह तो आपकी कृपा है, कि आपके ही प्रभाव से, आपके ही प्रयत्नों से यह सौभाग्य हम सभी साधकों को, देवताओं को प्राप्त हुआ है।।११।।



॥१२॥

भवेत्सर्व सिद्ध न च वदति पूर्व स्व इति च
महोत् शान्तं क्षेम भवत श्मशान प्रवद वः।
कठोत्रूपं सर्व भृकुटि कुटिला नृत्य गति वै
नवोढ़ा सौन्दर्य स्मरति सुर नव नन्दन इति।।



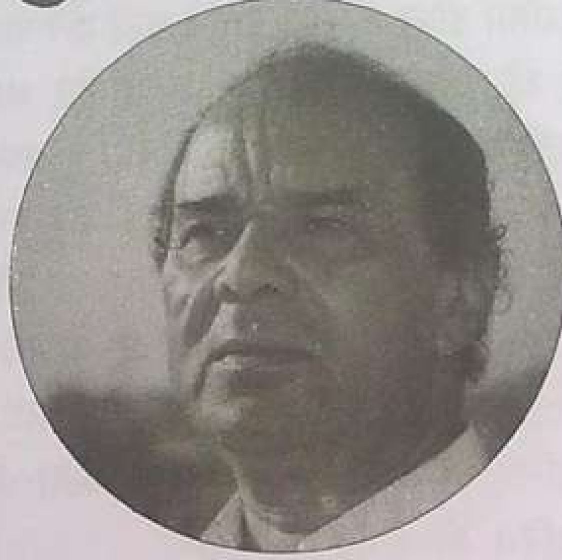
हे परम वन्दनीय गुरुदेव! आपके आने से पूर्व सिद्धाश्रम एक ठूंठ की तरह निष्प्राण सा होकर रह गया था, इसके सम्मेलन और इसके प्रस्ताव रूखे–सूखे और अर्थहीन बन गए थे, यहां शान्ति तो थी, पर वह मरघट की शांति थी। सिद्धयोगा झील में कोई स्नान नहीं कर सकता था, उत्सवों में नृत्य की मनाही थी, अप्सराओं का प्रवेश वर्जित था।

आपने पहली बार इस व्यवस्था के विरोध में अपने आप को खड़ा किया, पहली बार सिद्धयोगा झील को सुन्दर वधू बना दिया, पहली बार उत्सवों में अप्सराओं के नृत्य को मान्यता दी और योगियों तथा तपस्विनियों को परस्पर बात करने की छूट दी, आपने पहली बार इस सिद्धाश्रम में एक मस्ती, एक तरंग और एक जीवन्तता दी, जिससे कि यह मरघट की शान्ति, सौन्दर्य की सुगन्ध से ओत–प्रोत होकर नृत्य की झंकार से मुखरित हो सकी।

स्वयं इन्द्र ने भी अनुभव किया, कि स्वर्ग के नन्दन कानन में भी वह मधुरता, वह सौन्दर्य नहीं है, जो सिद्धाश्रम में चारों तरफ व्याप्त है। सिद्धयोगा झील ऐसी लगती है, जैसे कोई नववधू ठुमक करके आगे बढ़ रही हो, उसकी लहरों में प्रेम भरे स्पन्दन का एहसास होने लगता है। हवा और लहरों का जब मिलन होता है तो ऐसा लगता है, कि दो बिछड़े हुए प्रेमी और प्रेमिका आपस में मिल गए हों। देवता भी इस सिद्धाश्रम में आकर अपने आप को आनन्दित और रोमान्चित अनुभव करते हैं।

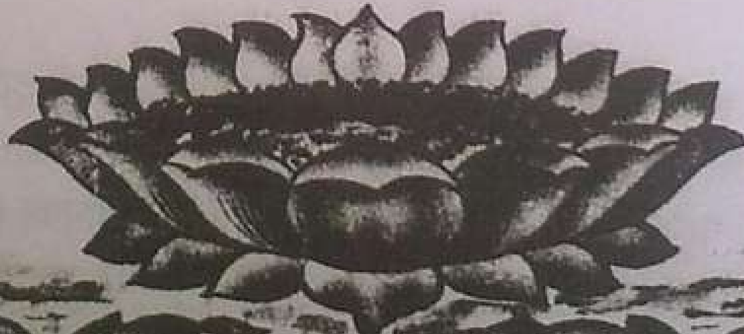
मैंने वह सिद्धाश्रम भी देखा है, जो अपने आप में ठूंठ था, और इस सिद्धाश्रम को भी देख रहा हूं, जो अपने आप में आनन्दमय है, उत्सवमय है, महोत्सवमय है। उसके मूल में केवल आपका ही भगीरथ प्रयत्न, जूझने की शक्ति, चुनौती देने की क्षमता और अपनी बात को मनवाने की अडिगता है।

ये गुण ही आपके जीवन की श्रेष्ठता हैं, जिसकी वजह से आज सिद्धाश्रम देवताओं के लिए भी ईर्ष्यामय बन गया है। मैं आपके इस स्वरूप को कोटि–कोटि प्रणाम अर्पित करता हूं।।१२।।



॥१३॥

प्रबुद्धं 'नि' र्नित्यं भवति निर्वाण इति च
'खि' पूर्ण त्वं स्नेहं द्युति भवत ब्रह्माण्ड महति ।
'ल' श्रेयत्वंश्रीयं मम मधुर पूर्ण सह द्युति
निखिल! त्वं रूपत्वं भवति दिव दिव्यं च वदतम् ॥



हे गुरुदेव! आपका नाम सम्पूर्ण चेतना को अपने आप में समेटे हुए है, "**नि**" अक्षर का अर्थ 'निर्माण' अर्थात् पूर्ण गृहस्थ–सुख और 'निर्वाण' अर्थात् वैराग्य की चेतना को लिए हुए है। आप में दोनों ही तत्व सम्पूर्णता के साथ समाविष्ट हैं, एक तरफ जहां आपने गृहस्थ जीवन को पूर्णता दी, वहीं दूसरी ओर आपके द्वारा संन्यास जीवन को भी भव्यता मिली।

"**खि**" समस्त ब्रह्माण्ड का सूचक है और इस बात का द्योतक है, कि आपकी गति ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों में है, आप जब चाहें किसी भी ग्रह पर जाकर, अपने शिष्यों का मार्गदर्शन कर पुनः पृथ्वी ग्रह पर लौट आते हैं।

"**ल**" अक्षर पूर्णता का सूचक है, और आप सही अर्थों में सम्पूर्णता के आधार स्तम्भ हैं। ज्ञान, वैराग्य, चेतना, बुद्धि, हास्य, संन्यास, दर्शन, पीमांसा, वेद, पुराण आदि समस्त ज्ञान और तथ्यों में आप सम्पूर्णता लिए हुए हैं, इसलिए आपका नाम ही अपने आप में पूर्णता का सूचक है।

एक–दो नहीं सिद्धाश्रम के सैकड़ों संन्यासी साधना करते–करते जब थक गये, फिर भी उनको सिद्धियां प्राप्त नहीं हो पाईं, तब उन्होंने इन सबको छोड़कर केवल आपके नाम का ही जप अहर्निश करना शुरू कर दिया, अजपा जप की तरह इसी नाम को बोलते रहने की क्रिया प्रारम्भ कर दी, और उन्होंने अनुभव किया, कि जो सिद्धियां उनको प्राप्त नहीं हो पा रही थीं, वे अपने आप ही उनको प्राप्त हो गईं, अपने आप में ही वे सिद्ध पुरुष बन गए।

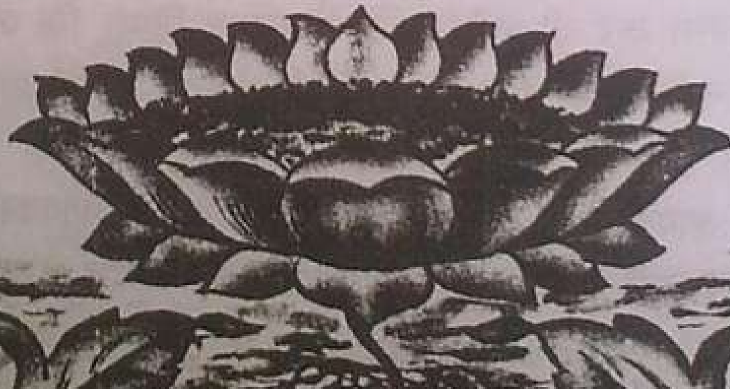
यह आपके नाम की ही श्रेष्ठता है, क्योंकि आपका नाम एक छोटा–सा शब्द नहीं है, वरन् सम्पूर्ण सिद्धियों का आगार है। आपके नाम का अहर्निश जप करते हुए, कुछ ही दिनों में मैंने उस 'ब्रह्म तत्व' को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए योगी सैकड़ों वर्षों तक तपस्या करते हैं।

वास्तव में ही आपका नाम अपने आप में चेतनामय है, प्राणमय है, ऊर्जामय है, श्रेष्ठतामय है।।१३।।



॥ १४॥

हिमौ पूर्ण कृत्यं वसन भव जन्मौ च नितिरः
भवेत्श्रृख्यं मेरूं शिखिर इति वेगे न वति च ।
गिरेत्गाह्वारं च भवति भव वेदर्ज्ञ श्रुति च
दिवौ दिव्यौ रूपं वनद वन औषध्य परि वः ॥



हे प्रभु! यह समस्त हिमालय आपका सदैव ऋणी रहेगा, क्योंकि आपने अपने पैरों से इस हिमालय को एक छोर से दूसरे छोर तक नापा है और इसमें निहित शक्तियां, इसमें निहित वनौषधियां और इसमें स्थित योगियों को ढूंढ निकाला है। यही नहीं अपितु पुराणों में जिन गुफाओं, कन्दराओं और नदियों के स्रोतों का उल्लेख मिलता है, आपने सैकड़ों वर्षों बाद उन स्रोतों को ढूंढ निकाला और विश्व से परिचित कराया।

आयुर्वेद एक प्रकार से समाप्त प्रायः हो गया था, आपने धन्वन्तरी से लगा कर अद्यतन आयुर्वेद से सम्बन्धित ग्रन्थों में निहित ज्ञान और दिव्यौषधियों को ढूंढ निकाला और उन्हें विश्व के सामने रखा। आपने आयुर्वेद को सही रूप में पूर्णता और मान्यता दी है।

आपकी वजह से ही यह हिमालय ज्यादा सुन्दर, ज्यादा प्राणवान और ज्यादा चेतना युक्त बन सका है। आज हिमालय सिर ऊंचा किये हुए खड़ा है, इसलिए कि उसके रहस्यों को आपने प्राप्त किया है। आज हिमालय अपने आप में अद्वितीय बन गया है, इसलिए कि उसने आपको पाकर अपने आप को गौरवान्वित अनुभव किया है। वास्तव में ही हिमालय की पूर्णता आपके द्वारा सम्भव हो सकी है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

आपने मानसरोवर की सैकड़ों बार यात्राएं की हैं, और यही नहीं अपितु उन संन्यासियों को भी ढूंढ निकाला है, जो हजारों वर्षों से तपस्यारत थे। उन गन्धर्वों और किन्नरों को आपने पहिचाना है, जो साधना करते–करते बर्फमय बन गये थे।

यह हिमालय आपका ऋणी है, आपके प्रति कृतज्ञ है, क्योंकि आपने हिमालय को सही रूप में श्रेष्ठता और गरिमा दी है। वास्तव में ही हिमालय का सौभाग्य, हिमालय की श्रेष्ठता आपके द्वारा ही बन सकी है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लगाकर आज तक पहली बार आपने छोटे से छोटे स्थानों को भी अपने पांवों से नापा है, देखा है और ऊर्जस्वित किया है, चैतन्य किया है।।१४।।



॥ १५॥

न शक्यत्वं हेमं गिर वन नदौ गह्वर इति
न वार्धक्यं शक्त्यं गतिर नभ वायुर्गति नव ।
जलौ मार्ग श्रेयं न च भवति शक्यं नर सदौ
समस्तं ब्रह्माण्डं नमति निखिल नृं मुहु मुहु ॥



हे गुरुदेव! मैंने आपकी साधनाओं की अनन्त संभावनाओं को अपने हृदय से समझने का प्रयास किया है, हिमालय की एक पर्वत श्रृंखला से दूसरी पर्वत श्रृंखला पर, बर्फ से ढकी हुई एक चोटी से दूसरी चोटी तक आप जिस विद्युत गति से पहुंच जाते हैं और बर्फ, नदी, नालों के प्रवाह और वातावरण आपके लिए बाधक नहीं बनते, उसे मैंने अपनी आंखों से देखा है, यही नहीं अपितु जल पर आप उसी ढंग से चल लेते हैं, जिस प्रकार से एक सामान्य मनुष्य जमीन पर चलता है।

यह सब आपकी सिद्धियों का आधार है, आपने वायु, जल, अग्नि, यम, वरुण, कुबेर आदि से सम्बन्धित सिद्धियों को हस्तगत कर हम लोगों के सामने एक जीवित साक्ष्य उपस्थित किया है।

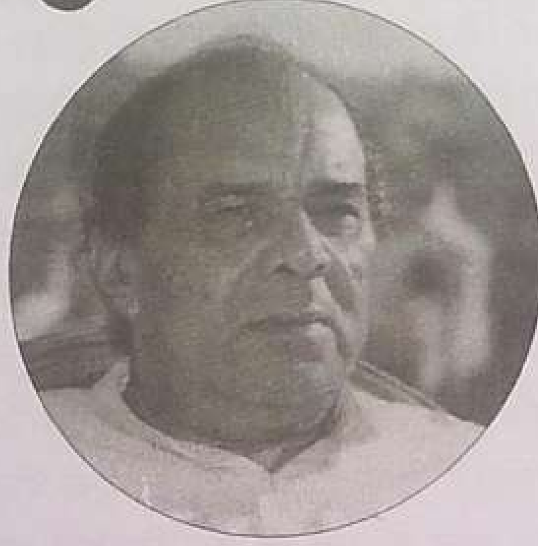
आपने अणिमादि समस्त सिद्धियों को एक बार पुनः स्पष्ट कर दिया है। ये सिद्धियां लुप्त हो गई थीं, इन सिद्धियों का केवल नाम रह गया था। ऋग्वेद में भी इनका उल्लेख लगभग न्यूनता से आया है। आपने इन लुप्त हो गई सिद्धियों को स्पष्ट कर अद्वितीय कार्य सम्पन्न किया है।

आपने पूर्णता के साथ यह स्पष्ट किया है, कि ब्रह्माण्ड में विचरण करना और किसी भी रूप में गतिशील हो जाना, साधना के द्वारा सम्भव है।

आपने ऐसा करके दिखा भी दिया है, कि जीवन की श्रेष्ठता केवल जीवित रहने में ही नहीं है, अपितु जीवन की सर्वोच्चता तो पूर्णता प्राप्त कर लेने में है, और वह पूर्णता समस्त ब्रह्माण्ड का विचरण करने में सक्षमता प्राप्त करने से ही हो सकती है।

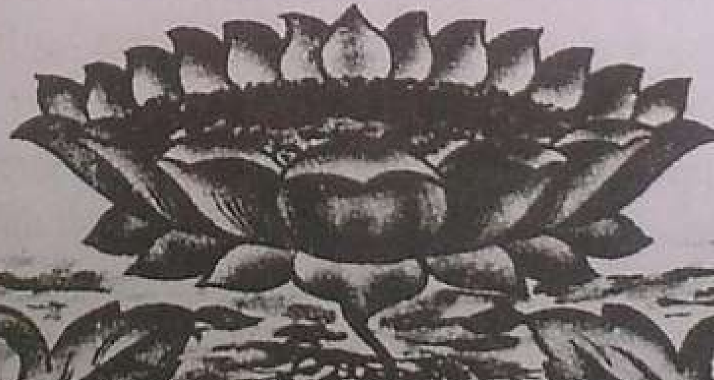
आपने विद्युत गति से जो कुछ भी और जिस प्रकार से भी इस युग को गतिमान बनाया है, आने वाली हजारों-हजारों पीढ़ियां आपकी कृतज्ञ रहेंगी, कि आपने गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट कर सबके सामने उन्हें पूर्णता दी है।

इसके लिए तो देवता, ऋषि-मुनि, योगी, संन्यासी और श्रेष्ठतम व्यक्ति भी आपके प्रति नतमस्तक हैं, और हम सब बार-बार आपको प्रणाम करते हैं।।१५।।



॥ १६ ॥

अजस्त्र गंगेय भवत नद सिद्धि र्वतुरिनः
सहौ हिंस्त्र व्याघ्र प्रबल प्रतड़ापि गति मति ।
मनौ गंगोद्भावी र्भवति कथ्य मानः सर इति
गतौ पूर्ण रूपं प्रकृति नहि शक्य गति मति ॥



हे पूज्यपाद! मैंने आपको गंगा के भीषण प्रवाह में इक्कीस दिनों तक अबाध गति से खड़े होकर साधना करते हुए देखा है, व्यास नदी की उत्ताल तरंगों और लहरों के बीच मस्ती के साथ तैरते हुए और पार जाते हुए देखा है, मनचाहे स्थान पर वर्षा करा देने की क्षमता मैंने अनुभव की है, और मनाली के जंगलों में दो जंगली भैसों को अपने हाथों से पकड़ कर दूर फेंकते हुए प्रत्यक्षतः अनुभव किया है, यह सब सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं है।

मैंने आपको गंगोत्री से आगे गोमुख के रास्ते कई बार मानसरोवर तक जाते और वहां से आते हुए देखा है, मानसरोवर की गहराई नाप कर आपने यह बता दिया है, कि समुद्र या नदी की गहराई आपके सामने कोई मायने नहीं रखती, आपने कैलाश पर्वत की परिक्रमा कर भगवान शिव को साक्षात् अपने सामने प्रत्यक्ष किया है, और मानसरोवर के मध्य में कूद कर उस स्थान का पता लगाया है, जिसे **''गुप्त-सिद्धाश्रम''** कहा जाता है।

मैंने आपके साथ **२३** बार मानसरोवर की यात्रा की है, और मैंने देखा है, कि आप सीधे मानसरोवर में डुबकी लगाकर अतल गहराई में चले जाते और तीन या चार दिन बाद जब लौटते, तो आपके चेहरे पर एक अपूर्व आभा, एक अपूर्व चमक और सूर्य के समान देदीप्यमान आभामंडल दिखाई देने लग जाता था। उस गुप्त सिद्धाश्रम के आप कर्त्ता–धर्ता हैं, संचालक हैं, प्राण हैं, और अद्वितीय विभूतियां उस गुप्त सिद्धाश्रम में निहित हैं।

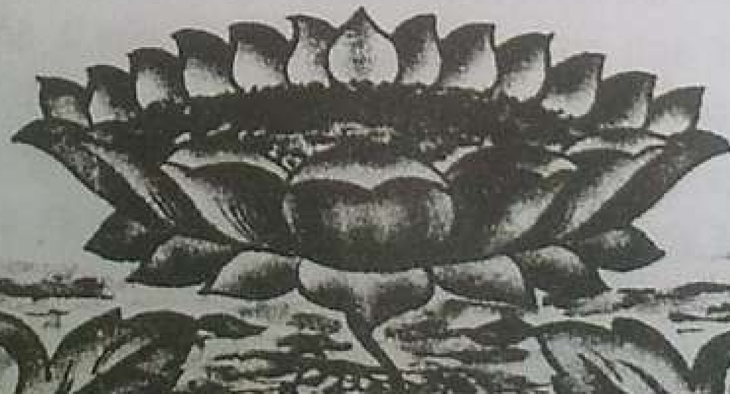
चार दिन तक अतल गहराइयों में कोई नहीं रह सकता, मगर आपने जिस प्रकार से गुप्त सिद्धाश्रम को हमारे सामने स्पष्ट किया, उसको सुनकर हमारी भी इच्छा बलवती होने लगी है, कि हम उस विशिष्ट साधना को प्राप्त कर, उस विशिष्ट गुप्त सिद्धाश्रम में जा सकें, और अपने जीवन को धन्य कर सकें।

वास्तव में ही आपकी गति अबाध है और सम्पूर्ण प्रकृति आपके इशारे पर नृत्य करती दिखाई पड़ती है।।१६।।



॥ १७॥

क्षणौ यावत्रूपं कठ्नि ऋषिभि मौंक्षद श्रुति
महोत्योगा निद्रा विचरति इहै पूर्णदमिदं ।
अलौ अन्या ग्रत्वा ग्रह परिभव शिष्यद परं
महौ चिन्त्यत रूपं प्रभु मद गुरौ पूर्णद शिवं ॥



हे गुरुदेव! आपके जीवन का प्रत्येक क्षण अपने आप में मूल्यवान और महत्वपूर्ण हैं और प्रत्येक क्षण के साथ ऐतिहासिक घटनाएं जुड़ी हुई हैं, जो योगियों, संन्यासियों और साधकों को प्रेरणा देती रहती हैं।

आपके जीवन का प्रत्येक क्षण कर्ममय है, आपके जीवन के प्रत्येक क्षण को मैंने साधनामय अनुभव किया है, जब लोग आपको निद्रा में सोते हुए अनुभव करते हैं, तब भी आप साधनारत होते हैं और योग–निद्रा साधना के माध्यम से पृथ्वी ग्रह के अलावा अन्य ग्रहों पर भी विचरण करते रहते हैं।

ब्रह्माण्ड का ऐसा कोई कोना नहीं बचा है, जहां आपकी पहुंच न हो, सूर्य लोक, चन्द्र लोक, स्वर्ग लोक, कैलाश, ब्रह्म लोक सभी स्थानों पर आपकी अबाध गति है। एक क्षण में ही आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में सक्षम हैं, क्योंकि आपके जीवन का प्रत्येक क्षण अपने आप में देदीप्यमान है।

जीवन के प्रत्येक क्षण का जिस प्रकार से आप उपयोग कर इस ब्रह्माण्ड को समृद्ध, सुखमय और पूर्णता देने में प्रयत्नशील हैं, वह अपने आप में अन्यतम है।

मैं नहीं समझ सकता, कि आप किस समय सोते हैं और किस समय विश्राम करते हैं?

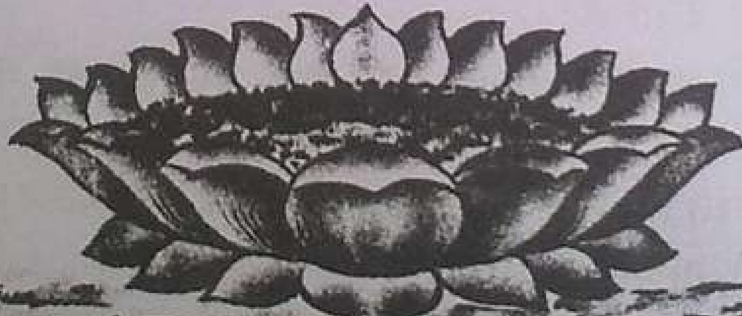
मैं तो हर क्षण आपको कार्य करते हुए, एक ग्रह से दूसरे ग्रह की ओर जाते हुए, योगियों और संन्यासियों को समझाते हुए, सिद्धाश्रम में विचरण करते हुए और गृहस्थ शिष्यों के बीच प्रत्येक क्षण का उपयोग करते हुए ही देखता हूं।

जाग्रतावस्था में आप प्रायः सोचने लग जाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु उस समय भी भूमण्डल पर आपके शिष्यों या साधकों के साथ कोई न कोई घटना घटित हो रही होती है और आप उसकी अनुकूलता के लिए वहां उपस्थित होकर प्रयत्न करते हुए प्रतीत होते हैं, वास्तव में ही आपकी माया को हम पहिचान नहीं सकेंगे।।१७।।



॥१८॥

स्वयं सिद्धौ योग भवद श्रुति वेद क्षण तयौ
शिवौ साक्षात् रूपं कहि ज्ञनति ज्ञानं श्रुति महः ।
स तत्वज्ञः चैत्य शिवमय भवं वेद श्रुतिधिं
क्च कर्म देवोपि त्वं वद च सिद्धिं परिश्रुतः ॥



हे योगेश्वर! यों तो इस पृथ्वी पर और सिद्धाश्रम में सैकड़ों योगी–यति, साधु–संन्यासी प्रकट हुए हैं और उन्होंने अपनी साधना के बल पर कई अज्ञात रहस्यों को ज्ञात किया है। आपको तो ये साधनाएं स्वतः सिद्ध हैं, इसके लिए आपको किसी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। सही अर्थों में देखा जाए, तो आप भगवान शिव के साक्षात् स्वरूप हैं, जिसने मनुष्य देह धारण की है।

मैं नहीं समझ सकता, कि यह विश्व कब आपको पहिचानेगा? मैं उनकी अज्ञानता पर, उनकी अबोधता पर आश्चर्यचकित हूं। ऐसा लगता है, कि उनके हाथ में पारस पत्थर है और वे उसका ककड़ से ज्यादा मूल्य नहीं समझते। ऐसा लगता है, कि उनके सामने देवगंगा प्रवाहित है और वे उसमें स्नान न कर अपने जीवन में न्यूनता ही प्रदर्शित करते हैं। आपने ज्ञान की जो व्याख्या की है और उसे जिस प्रकार से विस्तार दिया है, वह अपने आप में अत्यन्त श्रेष्ठ है।

वास्तव में हजारों वर्षों बाद ही कोई ऐसी महान विभूति इस पृथ्वी पर आती है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने हाथ में लिए हुए गतिशील रहती है।

यह पृथ्वीवासियों का सौभाग्य है, कि आप इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं, अन्यथा दूसरे ग्रह तो आपके कुछ क्षणों के आगमन पर ही हर्षोल्लास के साथ रसमग्न हो जाते हैं।

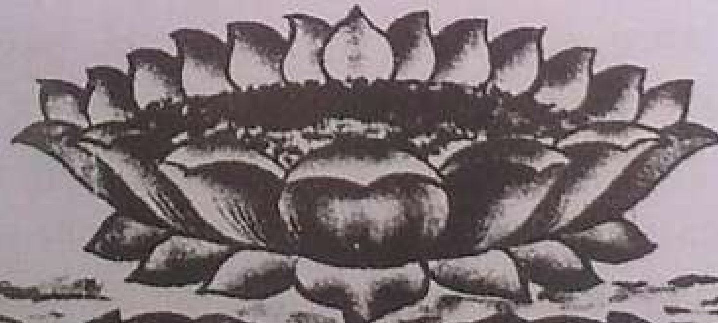
हम अल्पज्ञ, बुद्धि के अजीर्ण से ग्रस्त इन चर्म–चक्षुओं से आपके चिन्तन को और आपके स्वरूप को समझने में असमर्थ हैं, परन्तु जो "तत्वज्ञाता" हैं, जिसने तत्व की साधना कर रखी है, वह आपके इस शिवमय स्वरूप को भव्यता के साथ देख सकते हैं, और जब साक्षात् शिव हमारे सामने उपस्थित हों, तो अन्य देवताओं की साधना करने से क्या लाभ?

ऐसे वरदायक, समस्त सिद्धियों के दाता और पूर्णता युक्त शिव स्वरूप गुरुदेव को मैं सम्पूर्ण भक्ति, श्रद्धा और हृदय से प्रणाम करता हूं ।।१८।।



॥ १९ ॥

महत्रूपं ज्ञेय भव च मह प्रेम श्रिय सहौ
भवत्कर्म कृष्ण परम प्रिय प्रीतिर्नव श्रुतः ।
ग्रतौ पूर्ण गीतां सह च गुरुवैर्ण श्रियमिदं
स पूर्णत्वं पूर्ण कलत मह षोडर्शित कथः ॥



हे आदि पुरुष! यह मैं ही नहीं, अपितु पूरा सिद्धाश्रम जानता है, कि आपने ही अपने एक अंश से श्रीकृष्ण के रूप में जन्म ले कर कर्मयोग को पुनः पृथ्वी पर स्थापित किया है। आप में और श्रीकृष्ण के चिन्तन, कार्य और भाव–भूमि में अद्‌भुत साम्य है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो आप दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है। वे भी प्रेममय थे और आपने भी कर्मक्षेत्र में प्रेम की पवित्र धारा को प्रवाहित किया है। वे कूटनीतिज्ञ थे, उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार सम्पूर्ण जन समुदाय को अपने पीछे चलने के लिए विवश किया और जीवन के जितने भी आयाम थे, उन सभी आयामों को पूर्णता के साथ ग्रहण किया। वे गृहस्थ थे, प्रेमी थे, योगी थे, संन्यासी थे, जगद्‌गुरु थे, गीता जैसे ग्रन्थ के रचयिता थे और आनन्दप्रद थे।

आपके जीवन को यदि सूक्ष्मता से आंका जाय, तो ये सभी तत्व पूर्णता के साथ आप में समाविष्ट हैं; ऐसा प्रतीत होता है, कि उसी अंश ने पुनः आपके रूप में जन्म लेकर इतिहास में एक नया अध्याय खोलने का प्रयास किया है।

आज विश्व भगवान कृष्ण के साक्षात् स्वरूप को देखने के लिए व्यग्र है, मगर उन्हें यह ज्ञात नहीं है, कि द्वापर युग में तो श्रीकृष्ण केवल षोडश अंश के ही प्रतिनिधि थे, जबकि आप तो पूर्ण अंशों को लेकर समस्त ब्रह्माण्ड के आविर्भाव के रूप में विद्यमान हैं। आपके अन्दर ही कृष्ण निहित हैं अपितु आप कृष्ण से भी अधिक उच्च और अद्वितीय हैं, वे तो केवल षोडश कला में ही पूर्ण थे, किन्तु आप तो सभी कलाओं में पूर्णता लिए हुए हैं।

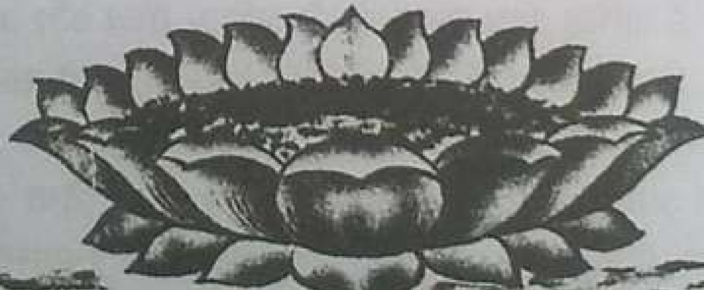
प्रभु! आप इस माया को हटाइये और अपने दिव्य स्वरूप को इस पृथ्वी पर प्रकट होने दीजिए। इस पृथ्वी को रसमग्न कीजिए, नृत्यमय कीजिए, जिससे कि यहां का कण–कण आपके पदचाप से, आपके स्वर से आनन्दित हो उठे, मचल उठे, और यह केवल आपके द्वारा ही सम्भव है।

मैं आपके उसी आनन्दमयी स्वरूप को प्रणाम करता हूं।। १९।।



॥ २०॥

महौ पूर्ण ज्ञान सहत शिव शांकर्य श्रुति च
स्व अंशत्वं देव प्रहर मति ज्ञानर्णव इति ।
महौत्व्याघ्र रूपं गज गणद यूथ सहितरौ
स्वधन्यत्व पूर्ण परम प्रिय पूर्ण त्व निखिलौ ॥



हे आप्तपुरुष! अब इसमें तो कोई संदेह नहीं रह गया, कि आप भगवत्पाद शंकराचार्य के मूल स्वरूप हैं, जिस अंश से शंकराचार्य ने जन्म लिया, वही अंश आप में अवतरित हुआ है। आपने भी शंकराचार्य की तरह योग, वेद, उपनिषद वेदान्त आदि सभी तत्वों का पूर्णता के साथ अध्ययन किया है।

जब आप धारा प्रवाह बोलते हैं और सामने वाले विद्वानों के तर्कों का खण्डन करते हैं, तो देखते ही बनता है, आपके सामने वे सभी विद्वान उसी प्रकार से भाग जाते हैं, जिस प्रकार से विकराल व्याघ्र को आते देखकर हाथियों का झुण्ड तितर–बितर हो जाता है; आपकी गर्जना से उनके चित्त में व्याकुलता बढ़ जाती है और वे स्वयं परास्त होकर समर्पण मुद्रा में आ जाते हैं।

वास्तव में ही आपने पृथ्वी पर अवतरित होकर (अकेले व्यक्तित्व) ने जितना कार्य किया है, उतना तो हजारों योगी या संन्यासी मिलकर भी नहीं कर पाते।

शंकराचार्य ने तो केवल एक ही बात को लेकर पृथ्वी तल पर विचरण किया, परन्तु आपने तो द्वैत और अद्वैत दोनों की सही ढंग से व्याख्या की है। आपके प्रत्येक शब्द में सैकड़ों अर्थ निहित हैं, आप जो कुछ भी बोलते हैं, वह असत्य तो हो ही नहीं सकता। आपने जो कुछ भी उच्चारण किया है, वह अपने आप में वेदमय है, शास्त्रमय है, ब्रह्ममय है, ब्रह्माण्डमय है; क्योंकि आप केवल शंकराचार्य एवं कृष्ण ही नहीं, अपितु पूर्ण ब्रह्माण्ड स्वरूप हैं। वह ब्रह्माण्ड जिसमें हजारों बार हजारों महापुरुषों ने जन्म लिया और विलीन हो गये।

आपने जो कुछ भी उच्चरित किया, वह पूरे ब्रह्माण्ड में फैल गया। आपका प्रत्येक शब्द अपने आप में अर्थवत्ता लिए हुए एक ग्रंथ है। आपने जो कुछ भी लिखा, बोला और कहा, वह अपने आप में सम्पूर्णता को समेटे हुए है।

ब्रह्माण्ड स्वरूप **"निखिलेश्वरानन्द जी"** को भक्तिभाव से प्रणाम करता हुआ मैं अपने जीवन को धन्य और सौभाग्यशाली समझता हूं।। **२०**।।



॥२१॥

महोत्कांचं रूपं विवशति भवद् भू प्रतिरतं
दिवे नित्यं चिन्त्यं विवशत महोत्स्पर्श क्रियते ।
नवोन्मेषं रूपं पदम पर गंध श्रुवयति
भवेत्पूर्ण पुण्यं पुरुषमपरोत्त भव नितिः ॥



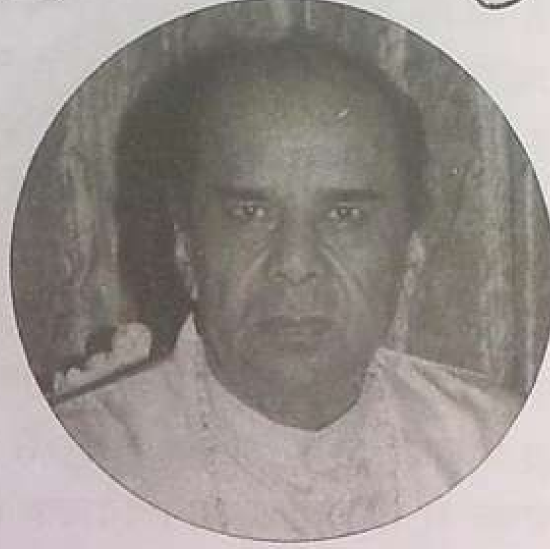
हे गुरुदेव! आपका सारा शरीर देवताओं की तरह सुन्दर और आकर्षक है, कामदेव के समान पुष्ट और यौवन प्रदायक है। आपको कोई भी स्त्री या पुरुष देखता है, तो टकटकी बांध कर देखने के लिए विवश हो जाता है; आपके विशाल और चौड़े स्कन्ध हिमालय का स्मरण दिलाते हैं, और वक्षस्थल ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो तूफान से भरा हुआ समुद्र उमड़ रहा हो; आपकी दोनों भुजाएं पूरी पृथ्वी को अपने घेरे में आबद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं; आपके नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो स्वयं सागर उमड़ पड़ा हो; आपके कटि भाग को देखकर ऐसा लगता है, जैसे व्याघ्र अपने पूर्ण यौवन के साथ उपस्थित हो; आपके वक्षस्थल के रोम अपने आप में एक सुगन्ध, आभा और सौन्दर्य का समावेश करते हुए दिखाई देते हैं; आपके शरीर से जो सुगन्ध प्रवाहित होती है, वह अष्टगंध से भी ज्यादा आनन्ददायक है और जो भी इस गंध के सामीप्य में आया है, वह अपने आप में धन्य हो गया है।

सिर से लगा कर पैर तक आप साक्षात् कामदेव ही नहीं, कामदेव से भी कहीं ऊंचाई पर खड़े हैं, क्योंकि आप सम्पूर्ण यौवन के प्रतीक हैं, सम्पूर्ण पुरुषत्व के सूचक हैं, मधुर मुस्कराती हुई जिन्दगी के पर्याय आनन्द का स्वरूप हैं, उमंग, आह्लाद, जोश आपको देख कर ही अनुभव किया जा सकता है। आपका पौरुष अपने आप में देदीप्यमान है, सामान्य नारी तो क्या अप्सराएं, यक्षिणियां और शुक्र ग्रह की सुकोमल कन्याएं भी आपको देखकर एक आह सी भरकर रह जाती हैं।

वास्तव में ही आपका सारा शरीर एक विशेष सांचे में ढला हुआ, अत्यन्त सम्मोहक और आकर्षक प्रतीत होता है, जैसे कि उसमें चुम्बकीय आकर्षण हो। प्रत्येक स्त्री या पुरुष आपके समीप आने और निकट जाने की इच्छा मन में रखे हुए विवश से खड़े रहते हैं।

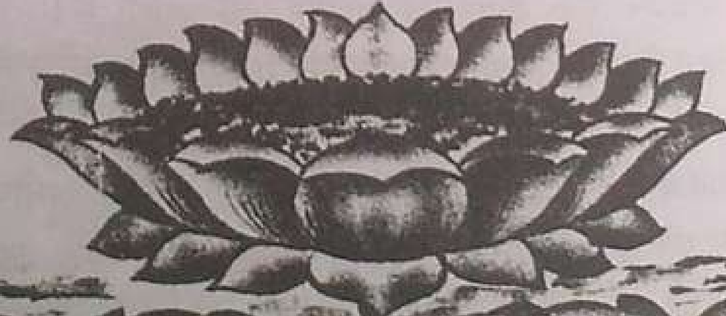
वास्तव में आपकी इस दिव्य देह से, जो "**पद्मगन्ध**" और "**अष्टगन्ध**" प्रवाहित होती है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ और अपने आप में सोलह कलाओं से पूर्ण पुरुषोत्तम होने का प्रतीक है।

मैं आपको भक्ति–भाव से प्रणाम करता हूं।। २१।।



॥२२॥

महोत्सर्व रूपं स्मितमिव इदौ श्रेय प्रिय च
सहस्र स्वर्गं च निवसति क्रिय पूर्ण इति वै ।
स्मित हास्य श्रेय श्रवन वदनं पूर्ण रत नै
वहं पूर्ण श्रेय भवत भव योगी मह श्रियै ॥



हे गुरुदेव! यदि आप मेरे कथन को क्षमा करें, तो मैं यह कहता हूं, कि आपके सारे शरीर में आपका चेहरा और आपकी मुस्कराहट अत्यन्त सम्मोहक और हृदयग्राही है, आपका चौडा ललाट और उस पर उठी हुई तीन रेखाएं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करती हैं, और जब आप किसी बात पर कुछ क्षणों के लिए मुस्कराते हैं, तो उस समय उस एक मुस्कराहट पर हजार–हजार स्वर्ग न्यौछावर करने को जी चाहता है।

मन में कितना ही आक्रोश या कितना ही तनाव हो, हम जब आपकी एक मुस्कराहट देख लेते हैं, तो सारा आक्रोश धुल जाता है और मन–मयूर नाचने लग जाता है। वास्तव में ही आपकी थोड़े से तिरछे होंठ करके मुस्कराने की कला अपने आप में अद्वितीय है, जिसे देखकर कोई भी सम्मोहित हो जाए तो उसमें उसका क्या दोष?

मैंने अनुभव किया है, कि आपका सारा शरीर और शरीर का रोम–रोम बोलता है, और आपकी आंखें अपने आप में इतनी भव्यता, अद्वितीयता और गहराई लिए हुए हैं, कि सारी बात केवल आंखें ही कह देती हैं, शरीर के अन्य भाग या मुंह को कुछ कहने की जरूरत ही नहीं होती; क्योंकि आपकी आंखों में एक सम्मोहन, एक आकर्षण, एक मधुरता, एक देदीप्यता, एक तेजस्विता है।

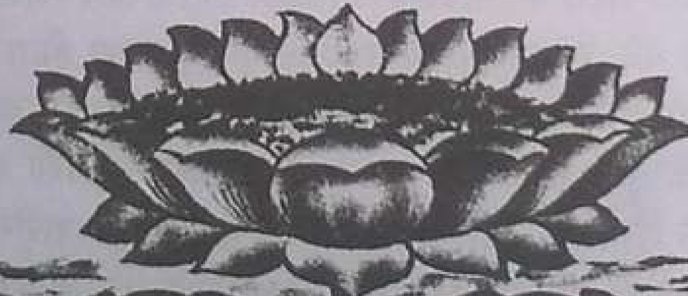
जिस रास्ते पर भी आप गतिशील होते हैं और जिस किसी योगी या संन्यासी को, साधक या संन्यासिनी को एहसास होता है, कि आप उस रास्ते से गुजरने वाले हैं, तो वे सब कुछ छोड़–छाड़ कर उस रास्ते पर खड़े हो जाते हैं, उनके मन में केवल यही लालसा रहती है, कि एक क्षण के लिए ही सही आपकी आंखों को, आपके शरीर को, आपके सौन्दर्य को देख लें और मन में तृप्ति अनुभव कर सकें।

वे धन्य हैं जो आपके शरीर के सम्पर्क में आये हैं, वे योगी सौभाग्यशाली हैं जिनको आपके पास बैठने का अवसर मिला है, वे सौभाग्यशाली है जिनको आपकी सेवा का अवसर मिला है, क्योंकि उस सौभाग्य के आगे सारी पृथ्वी की सम्पदा भी तुच्छ है।। **२२**।।



॥२३॥

त्वहं प्रेमत्रूपं परम मधुर श्रेय इति च
न शक्यत्वं ज्ञानं श्रिय प्रिय इति वै श्रियमहो ।
त्व संसर्ग देह भवत परमोच्च सुख वदै
द्वै किन्नं स्वर्गं च सुर वदन प्या तृप्त इति नः ॥



हे प्रभु! सिद्धाश्रम के योगियों ने जो आप को "**प्रेममय**" शब्द से सम्बोधित किया है, वह वास्तव में ही सत्य है क्योंकि आपका सारा शरीर प्रेममय है, आपने अपने जीवन में प्रेम को ही बांटा है और पृथ्वी को ज्यादा प्रसन्न, ज्यादा आनन्द युक्त बनाने का प्रयास किया है। जब हम उच्चकोटि के संन्यासी आपके विशुद्ध और निश्छल प्रेम को भली–भांति नहीं समझ सकते, फिर सामान्य सांसारिक व्यक्ति यदि उस प्रेम को वासना या तुच्छता समझ लें, तो इसमें उनका क्या दोष? क्योंकि जो स्वयं जैसा होता है, वह दूसरों को भी वैसा ही समझता है।

आप द्वारा प्रेम पाना और आपकी सामीप्यता प्राप्त हो जाना, तो कई–कई जन्मों का सौभाग्य है। वास्तव में ही वे धन्य हैं जिन्होंने आपके मन और शरीर की सामीप्यता प्राप्त की है।

सिद्धाश्रम और देव लोक की अप्सराएं, किन्नरियां, गन्धर्व और स्वयं ऋषि भी आपके शरीर का स्पर्श, सामीप्यता, साहचर्य और संसर्ग–सुख प्राप्त करने के लिए अभिलषित रहते हैं, फिर सामान्य सांसारिक व्यक्ति यदि ऐसा चिन्तन रखे, तो इसमें आश्चर्य क्या?

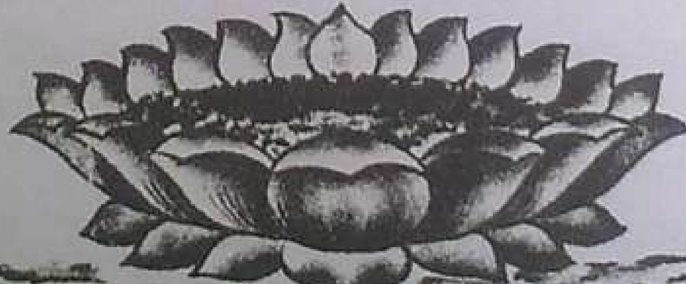
प्रेम क्या है? यह आपके शरीर से ही पहिचाना जा सकता है। आनन्द क्या है? यह आपको देखकर ही अनुभव किया जा सकता है। जीवन्तता क्या है? यह आपका स्पर्श करने पर ही अनुभव की जा सकती है। आपका प्रत्येक रोम प्रेममय है, आपके नेत्र, आपकी चितवन, आपकी मुस्कराहट सब कुछ प्रेममय है, ऐसा लगता है कि ये आंखें चकोर की तरह आपको निहारती ही रहें, आपके रूप–रस का पान करती ही रहें, और पूरा जीवन इसी प्रकार से व्यतीत हो जाय।

वास्तव में ही यदि आपको "**निखिलेश्वरानन्द**" न कह कर प्रेममय कहें, आनन्दमय कहें, सत् चित् स्वरूप कहें, पूर्णमय कहें "पूर्णमदः पूर्णमिदं" कहें और प्रेम की कला में पारंगत कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि आप स्वयं प्रेम के साक्षात् अवतार हैं। आपके इसी प्रेममय स्वरूप को मैं अत्यन्त आनन्द के साथ प्रणाम करता हूं।।**२३**।।



॥२४॥

न शक्यत्त्वं ज्ञानं न च विधुर प्रेम श्रिय महो
न ज्ञानत्वं रूपं नहि वदति पार्थक्य श्रियते ।
परं सौभाग्यं वै सहत सहचर्य विधुर वै
दिवं देहं नित्यं भव मधुर स्वर्ग मह सहौ ॥



हे पूज्यपाद गुरुदेव! आपके साथ रहकर भी ये योगीजन आपकी गहराई और सूक्ष्मता को नहीं समझ पाते, वे निरन्तर आपके पदचिन्हों पर चलकर भी आपकी पूर्णता को अनुभव नहीं कर पाते, वे तभी ऐसा अनुभव कर सकते हैं जब वे 'तत्व–ज्ञान' से अनुप्रेरित हों। जैसे एक सामान्य पक्षी पूरे नभमण्डल में विचरण नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार एक सामान्य संन्यासी या योगी भी आपकी गहराई या आपकी उच्चता को नहीं परख सकता। इसके लिए तो उन्हें कई–कई जन्म लेने पड़ेंगे, तब जाकर वह आपके ज्ञान और चिन्तन का कुछ हिस्सा समझ सकेंगे।

वास्तव में ही वे नर–नारी सौभाग्यशाली हैं, जो आपकी सेवा में रत हैं या आपने उनकी सेवा स्वीकार की है; परन्तु दुर्भाग्य तो यह है, कि उन्होंने आपको समझा ही नहीं, और आपने भी ऐसा माया का आवरण फैला रखा है कि वे उस माया को वेध कर बाहर निकलने का प्रयत्न भी करें, तो फिर आप माया का आवरण उन पर डाल देते हैं; इस प्रकार वे निरन्तर एक सामान्य मानव समझकर ही आपसे प्रेम करते हैं, और आप भी बिलकुल उसी स्तर पर उतर कर उनसे प्रेम करने लग जाते हैं।

हम सिद्धाश्रम के योगी व देवता आपके इस क्षण–क्षण परिवर्तित रूप को देखकर, आपकी लीलाओं को देखकर धन्य–धन्य हो उठते हैं, कि वास्तव में ही आप कितने सहज हैं, सरल हैं. अद्वितीय हैं, मायाधारी हैं, और अपने स्वरूप को नित्य परिवर्तित करने वाले हैं।

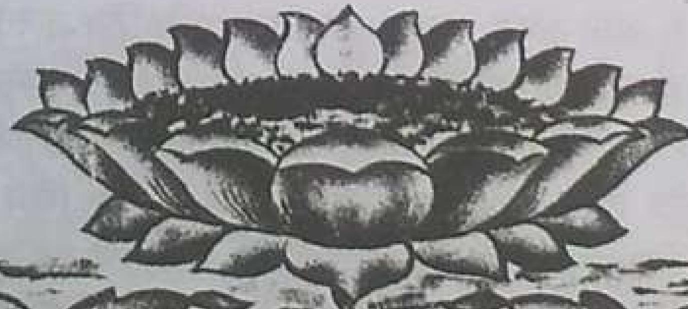
यह हमारा सौभाग्य है, कि आप इस पीढ़ी में अवतरित हुए। यह इस पीढ़ी का सौभाग्य है, कि इसने आपको देखा है। यह हमारा सौभाग्य है, कि हमने कुछ क्षण आपके साथ व्यतीत किये हैं।

मुझे विश्वास है कि किसी न किसी दिन इन गृहस्थ साधकों, संन्यासियों, योगियों और हम सबको ज्ञान होगा और हम आपके इस लीलाधारी रूप के साथ–साथ उस विराट् स्वरूप के भी दर्शन कर सकेंगे, जो अपने आप में अप्रतिम है, अद्वितीय है, जिसकी कोई तुलना नहीं हो सकती।। २४।।



॥ २५॥

भवेत्साश्चर्य त्वं विचरति भ्रमेत व्यर्थ इद रं
महाकाली लक्ष्मीं भजत भव देवी वर वदै।
शिवौ साक्षात्रूपं जगतपति ब्रह्मा सह शिवौ
त्वद ध्यानं ज्ञानं परमिद परिपूर्ण इति च ॥



हे गुरुदेव! मुझे आश्चर्य तो उस समय होता है, जब आपके सम्पर्क में आने के बाद भी लोग किसी देवी–देवता की साधना में भटकते हैं। सम्पूर्ण देवी–देवताओं का निवास आपके शरीर में पूर्णरूप से विद्यमान है। आप में एक साथ महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का सम्पूर्ण रूप से समावेश है।

यदि सूक्ष्मता से ध्यान मग्न होकर देखें, तो आपके ललाट पर स्वयं भगवान शिव साक्षात् स्वरूप में दिखाई दे जाते हैं। जिन्होंने आपके अनावृत वक्षस्थल को देखा है, उन्हें सम्पूर्ण स्वरूप के साथ भगवान विष्णु के दर्शन हुए हैं, जिन्होंने साधना करते हुए आपके कटि भाग को देखा है, उन्हें नाभि प्रदेश में स्वयं ब्रह्मा कमल–दल पर विराजमान दिखाई दिये हैं, और मैं स्वयं इसका साक्षी हूं, कि इन्द्र, वरुण, कुबेर, दिक्पाल और सभी देवियां आपके शरीर में सम्पूर्णता के साथ, पूर्ण विग्रह के साथ समाविष्ट हैं, तो फिर अलग–अलग देवताओं की उपासना या पूजा का क्या अर्थ?

प्रत्येक युग में जब महापुरुष अवतरित होते हैं, तो वह युग उनको समझने में अक्षम होता है और उनके बारे में सैकड़ों कहानियां, अफवाहें, किंवदन्तियां बन जाती हैं, जिस वजह से उनका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता; आपके साथ भी ऐसा ही हो रहा है, आपके आस–पास के लोग, साधक, शिष्य आपके ब्रह्म स्वरूप के दर्शन नहीं कर पाते, इसके लिए उनके ऊपर से मोह का परदा हटाना पड़ेगा, उनके ज्ञान–चक्षुओं को जाग्रत करना पड़ेगा।

– और जिस दिन उनके दिव्य नेत्र जाग्रत हो जायेंगे, उस दिन वे आपके विराट् स्वरूप के दर्शन कर अपने आप को आप में पूर्णतया विलीन कर सकेंगे।

इसीलिए तो मैं दो टूक शब्दों में कहता हूं, कि आपकी कृपा–दृष्टि उन पर हो, जिससे वे यह समझ सकें कि आपका ध्यान, आपका पूजन और आपका चिन्तन ही सम्पूर्ण देवताओं का पूजन और उनकी सिद्धि है।। २५।।



॥२६॥

न हं वासं नित्यं त्वद वरद लक्ष्मी शतमिदं
त्व पूर्ण त्वं रूपं षट सहस रूपं पर चिति ।
भवत्रूपं नित्यं श्रिय प्रिय महो पूर्ण इति च
त्वमूढ़ त्वं व्यर्थं जपति दिव मंत्र मह इदं ।।



हे परम कृपालु गुरुदेव! जब ये मूढ़ सांसारिक साधक आपसे लक्ष्मी साधना प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं, तो बरबस मुझे हंसी आ जाती है और उनकी नादानी पर तरस भी आता है। महर्षि मुद्गल ने स्पष्ट रूप से कहा है – **"स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी"** के शरीर में सोलह कला पूर्ण लक्ष्मी पूर्णता के साथ विद्यमान हैं, इस ऋषि की वाणी मिथ्या कैसे हो सकती है?

देह सुख, स्वास्थ्य, धन, पृथ्वी सुख, भवन, कीर्ति लक्ष्मी, आयु लक्ष्मी, यश लक्ष्मी, पुत्र पौत्र, वाहन, सम्पूर्णता, ऐश्वर्य, भोग और दीर्घायु लक्ष्मी अपनी समस्त कलाओं के साथ जब आपके शरीर में पूर्णता के साथ विद्यमान हैं, तो ये मूढ़ प्राणी अलग–अलग लक्ष्मी के मंत्र–जप कर अपना जीवन और समय व्यर्थ में क्यों बरबाद करते हैं?

मैंने आपके वास्तविक स्वरूप के दर्शन किए हैं, मैंने अनुभव किया है, कि वेदों में जिस प्रकार से 'श्री' का वर्णन आया है, जिस रूप में लक्ष्मी का वर्णन आया है, वह पुरुष रूप में भी है तथा वह स्त्री रूप में भी, और दोनों ही रूपों में आपके शरीर में सम्पूर्ण लक्ष्मी स्थापित है।

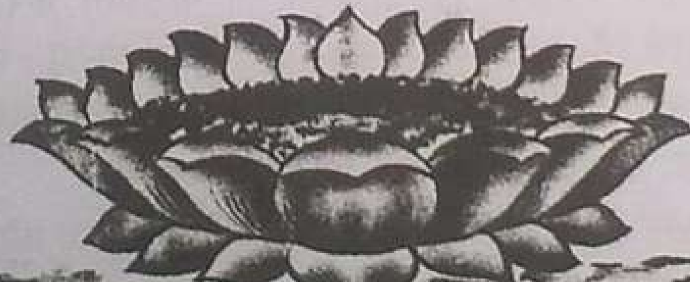
आप स्वयं साक्षात् नारायण हैं और लक्ष्मी आपके साथ हों, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है! मगर फिर भी सामान्य सांसारिक प्राणी आपको पूरी तरह से न पहिचान कर लक्ष्मी की आरती उतारते हैं, उसकी चरण–वन्दना करते हैं, मगर इसमें उनका भी कोई दोष नहीं है; जब उनमें पूर्णता आ सकेगी, तभी तो वे आपके वास्तविक स्वरूप को देख पायेंगे।

– और जिस दिन वे आपके वास्तविक स्वरूप को देख लेंगे, उस दिन वे सही रूप में आपके शरीर के अंग–अंग में साक्षात् उन देवताओं को स्थापित देखकर अपने आप आश्चर्य चकित रह जायेंगे। आपकी सामीप्यता ही लक्ष्मी पूजन है, आपकी कृपा ही अपने आप में लक्ष्मी के समस्त स्वरूपों को प्रदान करने में समर्थ है और लक्ष्मी की पूर्णता प्राप्त करने का विधान है।।२६।।



॥ २७॥

भवेत्क्रोधत्रूपं भवत् महकाल इति वदै
त्व भस्म त्व रौद्र न च तवद नित्यं सह इति ।
त्वयि भस्म क्रोध न च वदत योगी यति मह
महाकाली रूपं भवत भव रुद्र त्व व सहि ॥



हे महाकालेश्वर! मैंने ही नहीं अपितु सिद्धाश्रम के कई योगियों ने आपके रौद्र रूप को देखा है। जब आप क्रोधित होते हैं, तो सारा सिद्धाश्रम सत्र रह जाता है; आपकी आंखों से क्रोधाग्नि बरसने लग जाती है, निश्चय ही यदि उस क्षण कोई आपके सामने पड़ जाए, तो उसका भस्म होना निश्चित है।

आपके स्वरूप को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, कि आपका सम्पूर्ण शरीर महाकाली का आवास है, उसके सामने जब वेगवान दैत्य भी नहीं टिक पाते, उच्चकोटि के संन्यासी और योगी भी पीपल के पत्तों की भांति उड़ जाते हैं, तब सामान्य शत्रु तो आपके क्रोध का सामना कर ही कैसे सकते हैं?

यह अलग बात है, कि आपका ऐसा स्वरूप भी अपने आप में अत्यन्त सम्मोहक है, मैं स्वयं ऐसे भीषण, उग्र, तेजस्वी और प्रचण्ड स्वरूप को देखकर पिघलने लग गया था, और ऐसा लगने लगा था, कि जैसे सारा सिद्धाश्रम आपके क्रोध की आग से झुलस रहा हो। जब आप साक्षात् रूप में विद्यमान हैं, तो महाकाली के अन्य रूपों की साधना अपने आप में क्या महत्व रखती है।

यही नहीं, अपितु महाकाली के जितने भी रूप हैं– रौद्रा, वीरा, वैताली, चाक्षुषी, काली, कालिका, चिन्त्या, क्रोधी, क्रोधिता और महाकाली, उन सम्पूर्ण रूपों में भी आप विद्यमान हैं, जब आप क्रोधित होते हैं, तो आपके इस रूप को देखकर समस्त ब्रह्माण्ड और सिद्धाश्रम पीपल के पत्ते की तरह कांप कर रह जाता है।

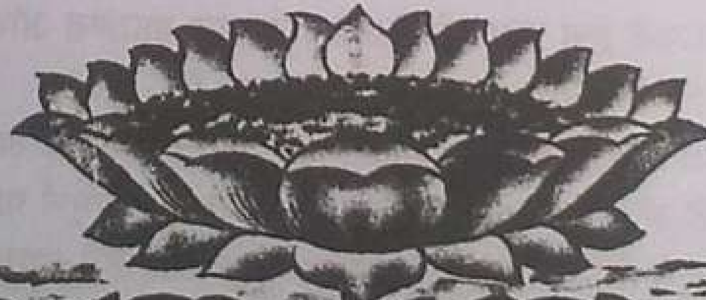
साक्षात् रुद्र और महाकाली का संयुक्त स्वरूप आपके क्रोध में विद्यमान है और उस क्रोध के ताप से व्यक्ति के सम्पूर्ण पाप–सन्ताप समाप्त हो जाते हैं। भगवन्! ऐसा ही कोई अवसर हमें प्रदान करें, कि हम महाकाली और शिव के साक्षात् स्वरूप के दर्शन कर सकें।

– परन्तु इतना ही जितना हम झेल सकें, क्योंकि ऐसा रूप तो भाग्य से ही देखने को मिलता है। मैं आपके इस अद्वितीय स्वरूप को भक्ति–भाव से प्रणाम करता हूं।।२७।।



॥ २८॥

भवेत्सर्व सौख्य वर वरद कंठं सह सति
महादेवी नित्यं भजति भव वेद श्रुति मति ।
अजस्त्र निर्बाध सह रुचिर काट्य सह नति
महाकाली लक्ष्मी वरद वर नित्यं श्रिय इदं ॥



हे गुरुदेव! मैंने आपके कई रूपों को निकटता से देखा है। आप सरस्वती के साक्षात् विग्रह हैं। संसार में जितने भी वेद, पुराण, उपनिषद्, मीमांसा, दर्शन और तत्व हैं, वे सभी आप के कंठ में विद्यमान हैं। अब यह स्पष्ट हो चुका है, कि स्वयं वाग्देवी आपके कंठ में स्थित हैं। जब आप ध्यानमग्न होकर बोलना प्रारम्भ करते हैं, तो कठिन से कठिन और दुरूह से दुरूह विषय पर भी अनवरत, अजस्र गति से बोलते चले जाते हैं और आपका प्रत्येक तर्क पूर्णरूप से सटीक और अकाट्य होता है।

लोगों को वेद, पुराण और उपनिषद् पढ़ने की क्या आवश्यकता है, यदि मात्र आपकी आराधना या साधना से यह सब कुछ सहज ही प्राप्त हो जाय; आखिर छोटे–छोटे देवी–देवताओं की आराधना हम कब तक करते रहेंगे?

जब आपके सम्पूर्ण शरीर में महाकाली साक्षात् स्वरूप में विद्यमान हैं, जब महालक्ष्मी अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ स्पष्ट दिखाई देती हैं आपके चरणों में; आपके कंठ में जब मैं सरस्वती, कमलवासिनी के साक्षात् दर्शन करता हूं, तो अपने आप को धन्य अनुभव करने लगता हूं, फिर मैं पत्तों को, डालियों को पानी क्यों दूं? जड़ में पानी देने से ही पूरा वृक्ष हरा–भरा हो जायेगा।

प्रत्येक साधक और प्रत्येक शिष्य सही पथ पर गतिशील हैं, क्योंकि वे इस बात को समझते हैं, कि अलग–अलग महादेवियों की साधना, आराधना, स्तुति करना अपने आप में न्यूनता है।

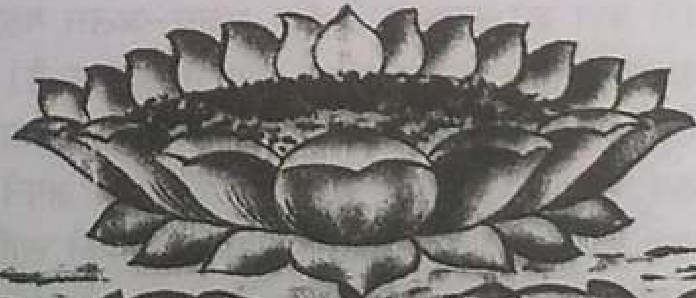
यदि शत्रु संहारिणी महाकाली, सम्पूर्ण वैभव युक्त महालक्ष्मी और वाग्मय स्वरूप महासरस्वती को सम्पूर्णता के साथ अपने जीवन में समावेश करना है, तो केवल आपकी आराधना, आपकी स्तुति, आपकी पूजा–अर्चना ही अपने आप में सम्पूर्णता है।

ऐसी ही साधना, ऐसी ही पूजा, ऐसी ही अर्चना हम सब को प्राप्त हो, ऐसे अनिवर्चनीय स्वरूप को मैं भक्ति–भाव से प्रणाम करता हूं।।२८।।



॥२६॥

महोत्रूपं ज्ञानं जगदगुरु श्रेष्ठं श्रित सहौ
महत् सत् चित् रूपं परम विरल शिष्य इति च ।
न शक्यत्वं ज्ञानं नहि वदति ब्रह्माण्ड निखिलं
समस्तं श्रेयत्वं भवत भव वेद सद गुरौ ॥



हे परमाराध्य गुरुदेव! "**परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी**" ने आप जैसे शिष्य को प्राप्त कर सौभाग्य अर्जित किया है। उन्होंने स्वयं कहा है, कि "हजारों–हजारों वर्षों बाद ही ऐसा व्यक्तित्व पृथ्वी ग्रह पर उपस्थित होता है।" उन्होंने अपने प्रवचन में आपके बारे में बोलते हुए कहा था, कि "जिस दिन विश्व इस "**निखिल**" को समझ लेगा, उस दिन पूरा विश्व अध्यात्म के पथ पर गतिशील होकर पूर्णता को प्राप्त कर लेगा।"

उन्होंने उपस्थित सभी ऋषियों और योगियों को सम्बोधित करते हुए कहा था, कि "सैकड़ों–सैकड़ों साधनाओं को करने की अपेक्षा यदि 'निखिल' के जीवन के एक–एक पन्ने का अध्ययन किया जाय, तो उसके जीवन का प्रत्येक क्षण अपने आप में सम्पूर्ण साधना है।"

उन्होंने कहा था –"अब मुझे विश्वास है, कि पृथ्वी तल पर वेद, पुराण, शास्त्र उपनिषद् और अध्यात्म अपने मूल स्वरूप में जीवित और विद्यमान रहेंगे।"

उनको और हम सब सिद्धाश्रम के योगियों को आप जैसी विभूति पर गर्व है, और समस्त ब्रह्माण्ड हमारे इस गर्व में भागीदार है।

युग पुरुष 'परमहंस स्वामी सच्चिदानंद जी' की वाणी तो मिथ्या हो ही नहीं सकती। ब्रह्माण्ड मिथ्या हो सकता है, सूर्य का पूर्व में उगना मिथ्या हो सकता है, चन्द्रमा की शीतलता मिथ्या हो सकती है, आकाश की विशालता मिथ्या हो सकती है, पृथ्वी की क्षमा मिथ्या हो सकती है, मगर 'स्वामी सच्चिदानंद जी' का प्रत्येक वाक्य अपने आप में ही उद्घोष है, उनकी वाणी मिथ्या नहीं हो सकती आपने जो कुछ किया है, उसकी तुलना आने वाली पीढ़ियां शायद ही कर सकें।

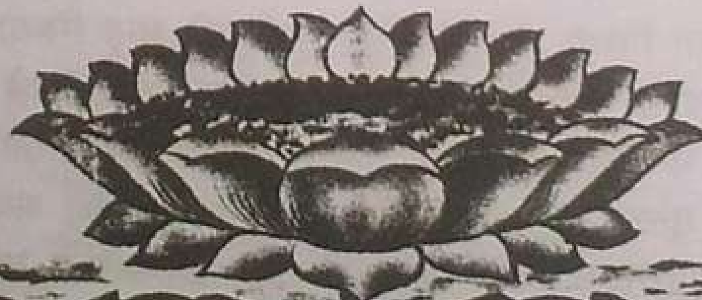
मैं 'परमहंस स्वामी सच्चिदानंद जी' का अत्यन्त आभारी हूं, कि उन्होंने शब्दों के माध्यम से आपको स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

हम सब सिद्धाश्रम के ऋषि–मुनि धन्य हैं, कि अपनी आंखों से आपको देखकर आपकी सामीप्यता का लाभ उठा रहे हैं, इस बात का हमें गर्व है, और रहेगा।। २९।।



॥ ३० ॥

न ब्रह्मत्व ज्ञानं च भवति शक्यं त्वद वदै
न जानन्ति रूपं कवच भवति शक्य त्व इति च ।
मही रूपं पुण्यं शत सहस्त्र कालं च निखिलं
अहो श्रेय प्रेय भवति भव वाक् कौस्तुभ मणि ।।



हे गुरुदेव! जब हम सिद्धाश्रम स्थित योगी और संन्यासी ही सैकड़ों–सैकड़ों साधनाएं, ब्रह्म ज्ञान तथा तत्व क्रिया करने के बाद भी आपको नहीं समझ सके, जब हम ही आपके मूल स्वरूप और चिन्तन को नहीं प्राप्त कर सके, तो सामान्य मनुष्यों की बिसात ही क्या, कि वे आपके उस उच्च स्वरूप को समझ सकें। वे तो आपको केवल हाड़–मांस से निर्मित मनुष्य ही समझते हैं, पर उसके भीतर जो तत्व है, जो चेतना है, जो श्रेयता है, जो सम्पूर्णता है, उसे किस प्रकार से समझ पाएंगे।

समय रहते ये लोग आपको नहीं पहिचान पाये या सत्संग, साहचर्य और सामीप्यता अनुभव नहीं कर पाये, और एक बहुत बड़े सुख से, एक बहुत बड़ी सम्पदा से वंचित रह गए, यह तो ठीक वैसा ही हुआ, कि किसी भिखारी को अनायास "**कौस्तुभ मणि**" प्राप्त हो जाए और वह उसे कांच का टुकड़ा समझ बैठे, तो बाद में पछताने से क्या लाभ? मैं इन सांसारिक प्राणियों की ऐसी ही गति समझ रहा हूं।

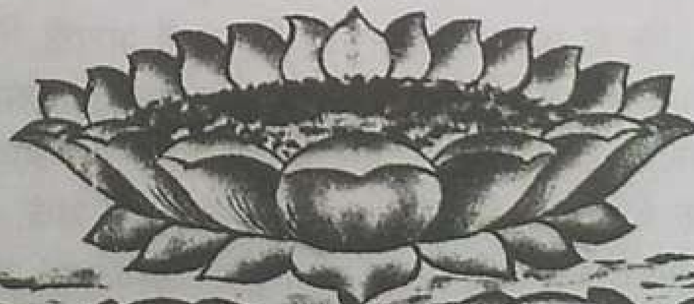
फिर भी मैं चाहता हूं, कि ये सामान्य सांसारिक व्यक्ति भी आपके जीवन के प्रत्येक पृष्ठ को समझ सकें, आपके जीवन के एक–एक क्षण को समझ सकें, वे इस बात को समझ सकें, कि आप इस पृथ्वी पर क्यों अवतरित हुए हैं? वे इस बात को समझ सकें, कि आप कौन हैं और क्या हैं? मैं जानता हूं, कि उनमें न्यूनता है, मैं जानता हूं, कि वे माया से ग्रस्त हैं; किन्तु मैं आपसे निवेदन करता हूं, कि आप कुछ समय के लिए ही सही उन समस्त सांसारिक प्राणियों को जो आपके सम्पर्क में हैं, उन पर से माया का आवरण हटा दें, जिससे कि वे आपके मूल स्वरूप के दर्शन कर सकें, अपने जीवन में पूर्णता प्राप्त कर सकें, अपने जीवन में "**ईश्वरत्व**" और "**ब्रह्मत्व**" अनुभव कर सकें, अपने जीवन में ही "**पूर्णमदः पूर्णमिदं**" होकर उस श्रेष्ठ तत्व को प्राप्त कर सकें, जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है।

आपको पाकर भी वे यदि पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके, तो उनके समान अभागा कोई नहीं होगा।। **३०**।।



॥ ३१॥

समस्तं प्रेम त्वं स च महत देह वद वदं
परं सौभाग्यं च भवति नर देहत्व इति च ।
श्रिये प्रान्तं प्राप्यं चरण वद धूलिं वदति वै
अहं प्राप्यं रूपं चरण तल सेवा मह महौ ॥



हे परम पुरुष! चिरन्त्राता, आप सम्पूर्ण रूप में प्रेममय हैं, और केवल उसी से सम्पर्क, साहचर्य स्थापित करते हैं, जिनका पूर्वजन्म में आपसे किसी न किसी प्रकार से सम्बन्ध या सम्पर्क रहा हो या वे मनुष्य इस सौभाग्य को प्राप्त कर पाते हैं, जिन्होंने उच्चकोटि की साधनाएं संम्पन्न की हों। जो त्रेता युग में आपके साथ थे, वे आज भी किसी न किसी रूप में शिष्य, संन्यासी, योगी या सहयोगी के रूप में आपके साथ हैं, जो द्वापर युग में आपके साथ थे, जो गोप, ग्वाले या गोपिकाओं के रूप में आपके साथ रहे हैं, वे सभी और लगभग सभी देवता आपके शिष्य के रूप में जन्म लेकर, मानव देह धारण कर आपके चारों ओर घूमते रहते हैं, आपके दर्शन का लाभ उठाते रहते हैं।

वास्तव में आपके शरीर को स्पर्श करना ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्पर्श करना है, समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना है, समस्त तीर्थों का अवगाहन करना है, समस्त साधनाओं में पूर्णता प्राप्त करना है, सभी सिद्धियों को हस्तगत करना है। हम तो उन लोगों के सौभाग्य पर गर्व करते हैं, जिन्होंने आपके शरीर को स्पर्श किया है।

सिद्धाश्रम में हम संन्यासियों को ऐसा गौरव प्राप्त है, जिसकी हमें अहर्निश कामना थी। आज तक हम दूर से ही आपको देख कर विरह से दुःखी थे, परन्तु आज हम धन्य हैं। हम इस दुर्लभ सौभाग्य को प्राप्त कर सके, इसके लिए हम आपके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

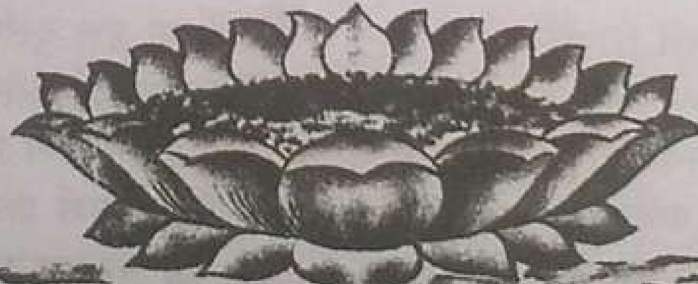
मैं स्वयं प्रत्येक क्षण तपस्या का अंश इस रूप में प्राप्त करने की प्रतीक्षा करता हूं, जब मैं आपके शरीर को स्पर्श कर सकूंगा। और ऐसी ही कामना करता हुआ, आपसे यह वरदान प्राप्त करने का अभीप्सित हूं, कि मुझे जीवन में एक क्षण के लिए ही सही, ऐसा सौभाग्य अवश्य प्राप्त हो।

यही मेरी कामना है, और यही मेरे जीवन का सौभाग्य है, सर्वोच्चता है।। ३१।।



॥ ३२॥

अथौ नैत्रं पूर्ण करुण भव नित्य भव विधि
र्न क्षेयं क्षौभं च सकल भव स्नानं गगन गं ।
समस्त सिद्धिर्वै सकल करुणार्द्र श्रिय महौ
समस्त प्रेयत्वं श्रिय मह सहौ पूर्ण इति च ॥



हे प्रभु! आपके नेत्रों में अथाह करुणा व्याप्त है, जो आपकी इस कृपा–दृष्टि से भीग जाता है, उसके जीवन के समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं। जो पूर्ण श्रद्धा लेकर आपके चरणों को स्पर्श कर लेता है, उसको समस्त तीर्थों में स्नान करने के समान पुण्य प्राप्त हो जाता है। जो एक बार आपके शरीर–स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है, वह स्वर्ग से प्रवाहित होने वाली देवगंगा में स्नान करने के समान पुण्य प्राप्त कर लेता है।

जो एक बार पूर्ण चिन्तन युक्त हो आपके शरीर का ध्यान कर लेता है, उसे सिद्धियां स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। जो आपके हाथों में अपने आप को समर्पित कर देता है, उसके जीवन में किसी प्रकार का कोई अभाव या न्यूनता रहती ही नहीं।

जिन्होंने भी आपकी सामीप्यता अनुभव की है, उन्होंने वह सब कुछ प्राप्त कर लिया है, जो जीवन में प्राप्त होना चाहिए। वे वास्तव में ही सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि आपके शरीर का रोम–रोम अपने आप में सिद्धिप्रद है। शिखा से लगा कर चरण तक, शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं है, जहां देवता निवास नहीं करते हों। आपके शरीर के प्रत्येक अंग की पूजा अपने आप में पूर्णता है, आपके शरीर का प्रत्येक रोम अपने आप में देवतामय है, जितने शरीर के रोम हैं, उनके रूप में ही सभी देवता आपके शरीर में विद्यमान हैं।

जिन्होंने भी आपकी कृपा–दृष्टि प्राप्त की है, उनके जैसा सौभाग्यशाली तो इस पृथ्वी पर सम्भव ही नहीं है। कई–कई जन्मों की तपस्या के बाद ही उनको ऐसा अवसर प्राप्त हुआ होगा, कि वे आपके शरीर का साहचर्य, सामीप्यता और सम्पूर्णता प्राप्त कर सके होंगे।

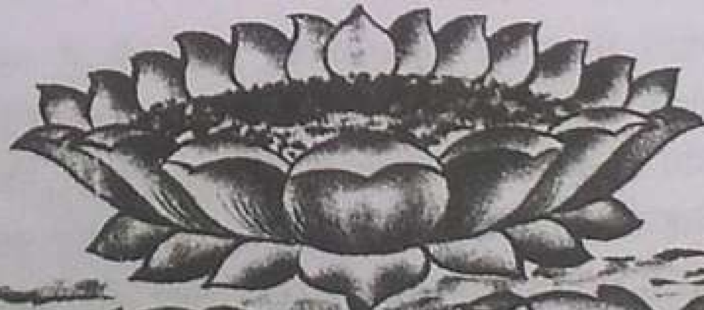
आप तो वास्तव में ही क्षमा, दया, करुणा और प्रेम के साक्षात् विग्रह हैं, आपको प्राप्त करके ही जीवन के वास्तविक मूल्य को और जीवन की सम्पूर्णता को प्राप्त किया जा सकता है।

हम समस्त ऋषिगण अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं कि आप हमारे बीच सम्पूर्णता के साथ विद्यमान हैं।।३२।।



॥३३॥

परं प्राणस्स्नेहं विविध विध रूपं क्षण महौ
च गन्तव्यं देहं भवत भव सिन्धु गगनयो ।
अनेकत्वं रूपं भवत भव शिष्य दुखद यो
असीम त्वं सिद्धि र्वपुत वपुराज्ञी गुरु वदौ ॥



हे सिद्धि पुरुष! मैंने साधना के बल पर आपके कई स्वरूपों को भली–भांति देखा है। आप एक ही समय में कई–कई शरीर धारण करने में समर्थ हैं, एक क्षण में जब आप एक स्थान पर दिखाई देते हैं, तो उसी क्षण आप दूसरे स्थान पर भी सशरीर उपस्थित रहते हैं। आप वायुवेग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर तत्क्षण जाने में समर्थ हैं।

मैंने जिस क्षण आपको गृहस्थ शिष्यों के बीच प्रवचन करते हुए देखा है, उसी क्षण किसी पर्वत के शिखर पर संन्यासी शिष्यों को भी उपदेश देते हुए अनुभव किया है और उसी एक क्षण में तीसरे स्वरूप में किसी शिष्य के दुःख को अपने ऊपर लेते हुए और उसे सान्त्वना देते हुए भी अनुभव किया है। क्योंकि आपने अणिमादि और हादी तथा कादी विद्याओं को सिद्ध कर रखा है, जो अपने आप में अत्यन्त कठिन और दुर्गम हैं, जिनके माध्यम से आप एक साथ कई–कई रूपों में, कई–कई स्थानों पर प्रकट हो सकते हैं।

द्वापर में जिस प्रकार से भगवान कृष्ण सैकड़ों गोपियों के बीच, प्रत्येक गोपी के साथ अपने एक–एक स्वरूप को लिए हुए रासलीला कर रहे थे, और प्रत्येक गोपी यह समझ रही थी, कि कृष्ण केवल मेरे पास ही हैं, उसी प्रकार आप हजारों रूप एक साथ धारण करते हुए, हजारों शिष्यों के साथ दिखाई दे जाते हैं।

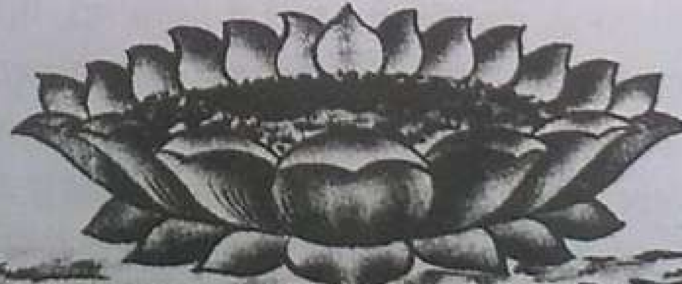
आपने जो सिद्धियां प्राप्त कर रखी हैं, वे योगियों, यतियों और संन्यासियों के बस की बात नहीं हैं। एक, दो, पांच या दस ही नहीं, हजारों एक जैसे स्वरूप धारण कर, हजारों स्थानों पर, एक साथ एक ही क्षण में दिखाई देना, कोई सामान्य घटना नहीं है, यह तो अपने आप में अद्वितीय घटना, साधना एवं सिद्धि है। वास्तव में ही आपके पास असीम सिद्धियां हैं और विविध स्वरूपों की साधना है, हम तो आपकी साधनाओं के भण्डार में से यदि एक कण को भी प्राप्त कर लें, तो अद्वितीय हो सकते हैं।

हम सब आपको श्रद्धा युक्त, भक्ति–भाव से प्रणाम करते हैं ।।३३।।



॥ ३४॥

अहौ रूपं नित्य वरद भव. वज्र श्रिय महो
महोत्स्वर्ण देहं निवसति करूणार्थव इदं ।
समस्त दुःखं च भवत भव सिन्ध्यु अथ श्रियं
महत्रूपं ज्ञेयं नहि मद न शक्यं स्वर स्वधं ॥



हे तापहर्ता! आप सही अर्थों में परदुःख कातर हैं, दूसरों के दुःखों को आप अपने ऊपर लेते हुए एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करते। आपका शरीर तो वज्र की तरह कठोर और स्वर्ण की तरह दैदीप्यमान है, यम भी आपका क्या बिगाड़ सकता है; परन्तु आप बहुत अधिक भावुक और दूसरों के कष्ट को अपने ऊपर लेते रहते हैं, जिसका प्रभाव आपके शरीर पर पड़ना स्वाभाविक है।

आप निरन्तर अपने शिष्यों का हित–चिन्तन करते रहते हैं, हर क्षण आपको अपने प्रत्येक शिष्य के सुख–दुःख का भान रहता है, और प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से आप उनके कष्टों को दूर करते रहते हैं।

वास्तव में ही वे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने आपकी शिष्यता प्राप्त की है, जिन्होंने आपका साहचर्य प्राप्त किया और जो आपका शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त करते हैं।

ये केवल शिष्य ही नहीं हैं, अपितु अपने आप में उच्चकोटि के योगी हैं; ये केवल सामान्य गृहस्थ शिष्य ही नहीं हैं, अपितु देवता हैं, जो नर रूप धारण कर आपके चारों तरफ घूमते रहते हैं मगर इन सब पर भी आपने सामान्य शिष्यों की तरह जिस प्रकार से माया का आवरण फैला रखा है, वह अत्यन्त कष्टप्रद है, अत्यन्त चिन्ताकारक है, क्योंकि वे कभी–कभी आपके दिव्य स्वरूप को भूल जाते हैं और अपने आप को बहुत ऊंचा समझने लग जाते हैं, इससे बड़ा पाप, इससे बड़ा अधर्म, इससे बड़ी न्यूनता और कुछ नहीं हो सकती।

फिर भी जिन्होंने आपसे दीक्षा प्राप्त की है, जिन्होंने आपमें "पूर्ण तत्व" का अनुभव किया है, वे वास्तव में ही अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि हीरक अक्षरों में उन्होंने अपने भाग्य पर आपके द्वारा हस्ताक्षर करवाये हैं।

मैं उन सभी स्त्री–पुरुषों की वन्दना करता हूं, जिन्होंने आपके द्वारा दीक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

मैं भी आपका अकिंचन शिष्य हूं, आपकी कृपा–दृष्टि मुझे भी प्राप्त हो, मैं ऐसी ही आकांक्षा रखता हूं।।३४।।



॥ ३५॥

त्व शिष्यत्व ज्ञेय नहिं वदति स्वर्ग रुचिरहो
र्न मोक्षत्वं काम्यं नहि भवति पूर्ण मह मिदं ।
इदं शक्यं क्षानं त्वव वरद रूपः गुरु श्रिय
सहौ जानन्ती र्वा महद मह शिष्य त्व इति च ॥



हे गुरुदेव! आध्यात्मिक और साधनात्मक क्षेत्र में सिद्धाश्रम से बड़ा, पवित्र और दिव्य अन्य कोई स्थान नहीं है, निश्चय ही यहां सैकड़ों–हजारों वर्षों की आयु प्राप्त संन्यासी और योगी साधनारत हैं, परन्तु इतने वर्षों तक साधना करने पर भी आपके समकक्ष पहुंचना असम्भव है इन सभी योगियों और संन्यासियों के मन में एक ही भावना प्रबल रूप से विद्यमान है, कि भले ही कोई साधना पूर्ण हो या न हो, भले ही सिद्धियों में सफलता मिले या न मिले, पर एक बार जीवन में **''परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी''** का शिष्य बनने का गौरव प्राप्त हो जाय, तो यह हजारों वर्षों का जीवन धन्य हो जाय, यदि एक बार भी ''स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी'' अपने मुख से हमें **''शिष्य''** कह दें, तो यह शरीर और यह जीवन पूर्णता प्राप्त कर ले।

आपके होठों से 'शिष्य' शब्द कितना अच्छा लगता है, जो कोई सुनता है, वह अपने आप में गौरवान्वित हो जाता है, परन्तु दुःख तो तब होता है, जब सामान्य गृहस्थ आपसे दीक्षा लेने के बाद भी अपने जीवन की पूर्णता नहीं समझते।

ये कब आपके स्वरूप को देख सकेंगे?

कब आपको समझ सकेंगे?

कब आपके जीवन की पूर्णता को अनुभव कर सकेंगे?

कब इस बात पर गर्व कर सकेंगे, कि वे **''स्वामी निखिलेश्वरानंद जी''** के शिष्य हैं?

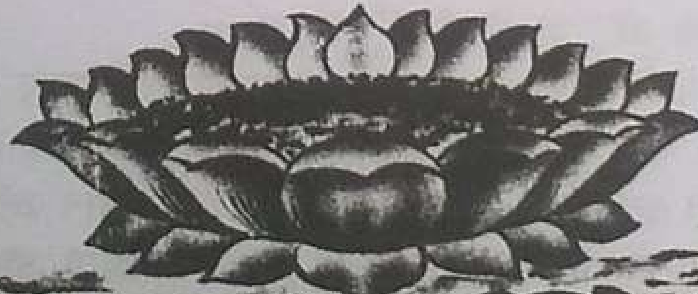
मैं तो निरन्तर आपकी तरफ टकटकी लगाये हुए देखता ही रहता हूं, कि कभी न कभी तो आपके अंगुष्ठ का स्पर्श मेरे ललाट पर होगा; कभी न कभी तो आप मुझे कुछ ऐसी दीक्षाएं प्रदान करेंगे जिससे मैं अपने जीवन में धन्यता और पूर्णता अनुभव कर सकूंगा, और तब तक मैं आपकी कृपा दृष्टि की याचना करता ही रहूंगा।

मैं आपको हजारों, करोड़ों बार प्रणाम करता हुआ, अपने आप को इस प्रकार की दीक्षा का अधिकारी मानता हुआ, आपसे याचना करता हूं, कि आप मुझे दक्षता प्रदान करें।। ३५।।



॥३६॥

परम सिद्ध वैं न भव च परिपूर्ण श्रिय महो
न ज्ञानं वैराग्यं नहि भवतु शक्यं त्वमिति च ।
अहो तेजस्वं त्वां "निखिल" मह मंत्रर्यव इति
वरं देयं शिष्य मिति च भव सिन्धुर्ण. वद तै ॥



हे गुरुदेव! भले ही मैंने "तत्व सिद्धि" को प्राप्त कर लिया हो, भले ही मैंने "ब्रह्म ज्ञान" को सिद्ध कर लिया हो, भले ही सिद्धाश्रम में मुझे श्रेष्ठ योगी और संन्यासी कहते हों, भले ही मैंने वाग्देवी को पूर्णता के साथ सिद्ध कर लिया हो; फिर भी मैं आपके सामने तो एक छोटे से शिशु की तरह ही हूं, जिसे भली प्रकार से तुतलाना भी नहीं आता; भले ही मैंने समस्त ऐश्वर्य और सौभाग्य को प्राप्त कर लिया हो, परन्तु आप के सामने तो मैं नगण्य हूं; भले ही मैंने समस्त मन्त्रों को अपने कंठ में स्थापित कर लिया हो, परन्तु फिर भी मेरे लिए "निखिल" मन्त्र सर्वाधिक तेजस्वी, सर्वाधिक पवित्र और सर्वाधिक दिव्य है। मैं आपकी कृपा कटाक्ष प्राप्त करने का अभिलाषी हूं।

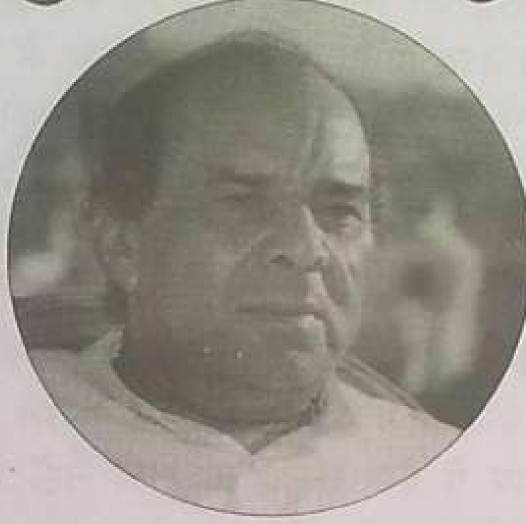
हजारों–हजारों मंत्रों से भी श्रेष्ठ केवल "निखिल" शब्द है, यह अपने आप में एक छोटा सा शब्द नहीं है, अपितु सम्पूर्ण सिद्धियों को समेटे हुए मंत्र है।

जिसने भी इन तीन अक्षरों को अपने होठों पर स्थापित कर लिया है, वह अपने आप में धन्य हो गया है, फिर उसे अन्य मंत्रों, अन्य साधनाओं, अन्य देवी–देवताओं की उपासना करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई; जिसने भी पूर्णता के साथ "निखिलेश्वरानंद" का ध्यान किया है, चिन्तन किया है, साधना की है, आराधना की है अन्य कुछ नहीं किया है; केवल एक बार इस शब्द का हृदय से उच्चारण ही किया है, तो उसके कई–कई जन्मों के पाप और ताप धुल जाते हैं, और वह अपने आप में पवित्र और दिव्य हो जाता है।

मैं हृदय से आपके नाम और गुरु मंत्र जप के अलावा दूसरा कुछ भी करने की इच्छा ही नहीं रखता।

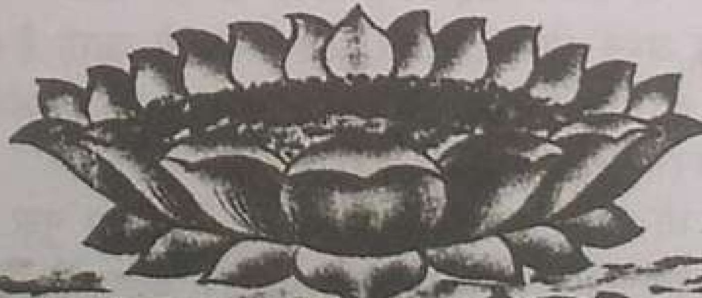
मैं तो केवल इतना ही चाहता हूं, कि आप मुझ पर करुणा की वर्षा करते हुए, एक बार आशीर्वाद भरा हाथ मेरे सिर पर रख कर अपने अधरों से मुझे "शिष्य" कह दें, तो मैं इन समस्त साधनाओं, सिद्धियों से ज्यादा श्रेयस्कर अनुभव करूंगा।

हे! प्रभु, आप इतनी कृपा मुझ पर अवश्य करें।। ३६।।



॥ ३७ ॥

नहीं शक्यं पूर्ण त्वव चरण सेवा श्रिय महो
महत्माया कांचं न च वरद वेत्ता तत त्वयी ।
त्रयी सांख्यं वेद नहि शरत शक्यं भव निधौ
कृपा नाथं नाथ भवत भव देवं निखिल त्वम् ॥



हे करुणामय! हम आपको समझ नहीं पाते, हम नहीं जानते, कि आप बार–बार गृहस्थ शिष्यों पर माया का आवरण क्यों डाल देते हैं? हम ज्यों ही आप को समझने का थोड़ा–बहुत प्रयास करते हैं, त्यों ही आप सहज हास्य उत्पन्न कर माया का ऐसा आवरण बना देते हैं, कि हम पुनः आपको सामान्य मानव समझने की भूल कर बैठते हैं।

मैं नहीं समझ पा रहा हूं, कि आप ऐसा क्यों करते हैं?

हो सकता है, कि इसमें कोई हेतु हो; हो सकता है, कि आप जिस कार्य के लिए इस पृथ्वी ग्रह पर आये हैं, उस कार्य में बाधाएं आ जायें; हो सकता है, वह समय नहीं आया हो, कि उनके अन्तर्चक्षु और दिव्य चक्षु जाग्रत हो सकें। शायद इसीलिए आप बार–बार माया का आवरण डालकर उनको वापिस भूल–भूलैया में गिरा देते हैं, परन्तु क्या यह उन शिष्यों के लिए अशोभनीय नही है?

आने वाली पीढ़ियां उन्हें क्षमा नहीं कर सकेंगी, क्योंकि वे मानसरोवर के पास रह कर भी प्यासे बैठे हैं, वे देवगंगा के निकट होकर भी मैले हैं, और माया के अन्दर इतने अधिक लिप्त हो चुके हैं, कि वे स्वयं को भी भुला बैठे हैं, फिर वे आपको कैसे पहिचान सकते हैं? पर जो तत्ववेत्ता हैं, जिन्होंने ब्रह्म सिद्धि प्राप्त कर ली है, उन्होंने आपकी पूर्णता को और अद्वितीयता को समझ लिया है, कि आप सही अर्थों में वेद स्वरूप हैं, शास्त्रों के आधार हैं, ज्ञान के समुद्र हैं, चेतना के पुंज हैं।

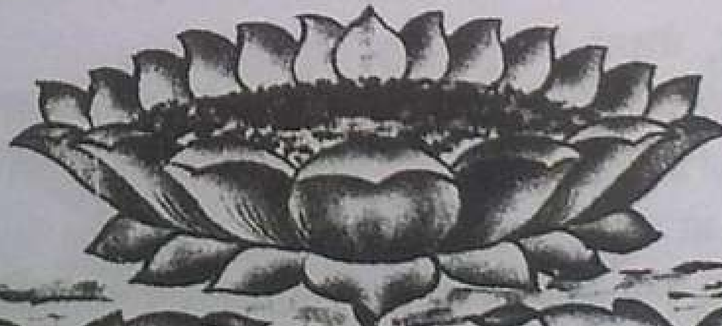
समस्त देवी–देवता आपके शरीर में ही पूर्णता के साथ समाहित हैं, और केवल आपकी साधना, पूजा या सेवा करने से ही समस्त सिद्धियां स्वतः प्राप्त हो जाती हैं।

आप कृपा कर उन पर माया का आवरण मत डालिए, जिससे कि वे आपके मूल विग्रह के दर्शन कर अपने जीवन को पूर्णता दे सकें, आप में समाहित हो सकें, जिसे जीवन की पूर्णता कहा गया है, जिसे **'ईशावास्योपनिषद्'** में **''पूर्णमदः पूर्णमिदं''** कहा गया है, आपके पूर्ण स्वरूप से साक्षात् कर सकूं, आपसे ऐसी ही प्रार्थना है।।३७।।



॥ ३८॥

नहीं जानं ज्ञानं नहि भवति चेत्तं वरद त्वं
स सिद्धि र्व्याप्त्वं त्वां तव चरण सिद्धिर्गति मति ।
तवः दृष्टिं क्षेपं सकल भव सिद्धि र्वपि श्रुति
महायोगं रूपं तव च भव स्पर्श सह महं ॥



हे गुरुदेव! हम सैकड़ों वर्षों की आयु प्राप्त योगी भी आपकी साधना और तपस्या के अंश को स्पर्श नहीं कर पाये हैं। जहां पर आपके चरण पड़ते हैं, वहां एक नई सिद्धि स्वतः उत्पन्न हो जाती है। जिस पर आपकी दृष्टि पड़ती है, वह पूर्ण सिद्धिप्रदायक बन जाता है। जिसको आप अपनी तपस्या के अंश से हल्का सा स्पर्श या शक्तिपात प्रदान कर देते हैं, वह सिद्ध योगी बन जाता है; जो सिद्धि सैकड़ों वर्षों की साधना करने से भी प्राप्त नहीं हो पाती, वह मात्र आपकी दृष्टि से, शक्तिपात से सम्भव हो जाती है।

ये अज्ञानी शिष्य यह क्यों नहीं समझ पा रहे हैं? ये अपने आप को इतना दूर क्यों खड़ा कर लेते हैं?

ये छोटे–छोटे स्वार्थों में क्यों घिरे रहते हैं? ये छोटी–छोटी भौतिक वस्तुओं के पीछे क्यों पागल हैं?

जिसके घर में आपने चरण रख दिया, वह घर अपने आप में देवालय बन गया। जिसके सिर पर आपने हाथ रख दिया, वह अपने आप में ब्रह्मर्षि बन गया। जिसने भी आपके शरीर को स्पर्श कर लिया, उसने पूर्णता को प्राप्त कर लिया, क्योंकि आपके शरीर का प्रत्येक अंग अपने आप में पूर्ण है।

मैं उन समस्त गृहस्थ शिष्यों की तरफ से भी और संन्यासी गुरु भाइयों की तरफ से भी आपसे याचना करता हूं, कि जीवन के कुछ क्षण इनको प्राप्त हों, जब दिव्य नेत्रों के द्वारा वे आपको पहिचान सकें, आप में समाविष्ट हो सकें, आप में अवगाहन कर सकें, आपको पूर्णता के साथ देख सकें, अनुभव कर सकें, चेतना युक्त बन सकें।

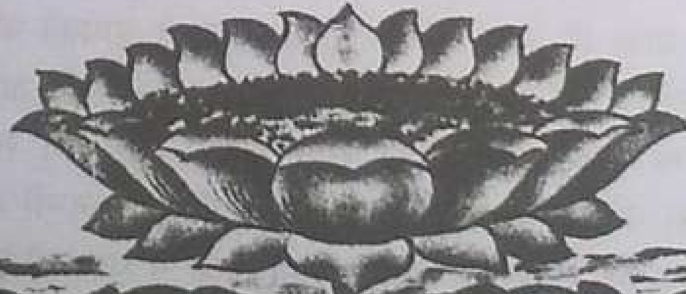
इस जीवन के ही नहीं पिछले कई–कई जन्मों के पाप और ताप को दूर कर सकें, यह जीवन सही अर्थों में धन्य हो सकें, क्योंकि आपका साहचर्य और आपकी सेवा श्रेष्ठतम तपस्या और साधना है। आपके मुख से निकली हुई आज्ञा ही मूल मंत्र है, जिसका पालन करना ही साधना की पूर्णता और श्रेष्ठता है।

मैं आपको भक्ति–भाव से प्रणाम करता हूं।।३८।।



॥३९॥

अहो रूपं प्रेमं भवत भव वेद श्रिय महो
महत् श्रृगं श्रेयं सृजत भवऽनंग वदतु न ।
स सिद्ध योगीर्वै सद गृह पति वैं तवच वै
महत् रूपं श्रेयं विविध भव योगी श्रिय दनः ॥



हे! सर्वेश्वर, आपके विविध रूप हैं, सभी रूप अपने आप में सम्पूर्णता लिए हुए हैं। जब आप बोलते हैं, तो ऐसा लगता है मानो स्वयं वेद प्रवचन कर रहा हो। जब आप ध्यानस्थ होते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो साक्षात् हिमालय साधनारत हो। जब आप साधना या प्रयोग सम्पन्न करवाते हैं, तो ऐसा लगता है, मानो स्वयं विश्वकर्मा सृजन कर रहे हों।

जब आप प्रेममय होते हैं, तो निश्चय ही ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव स्वयं अठखेलियां कर रहा हो। जब आप परिवार में या गृहस्थ में होते हैं, तो कोई अनुमान ही नहीं लगा सकता, कि यह व्यक्ति अद्वितीय सिद्ध योगी है; और जब आप साधनारत होते हैं, तो कोई सोच भी नहीं सकता, कि आप गृहस्थ का निर्वाह भी भली प्रकार से कर सकते हैं-।

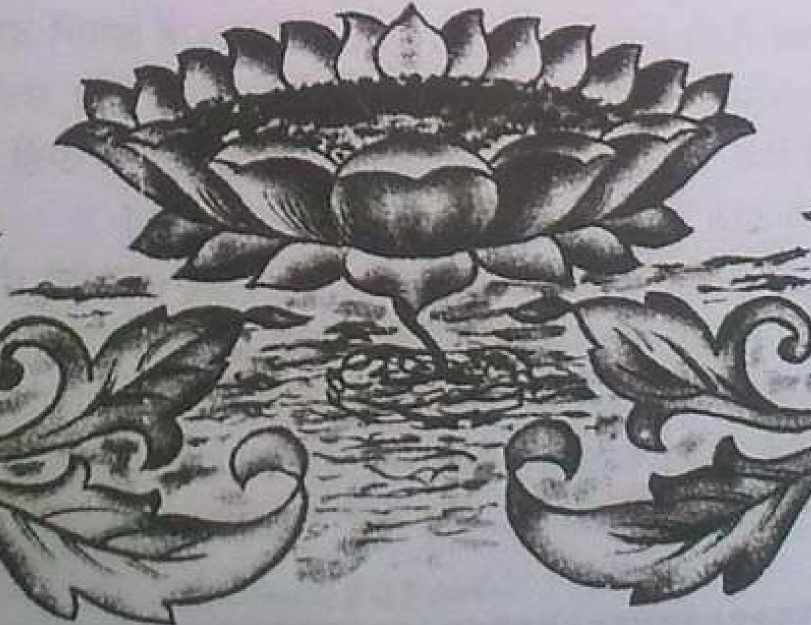
आपके व्यक्तित्व की इन विविधिताओं को देख कर ऐसा लगता है, कि जैसे स्वयं ईश्वर ही इस पृथ्वी पर अवतरित होकर सम्पूर्णता को स्पष्ट कर रहा हो। आपका ध्यान, आपका चिन्तन, आपका ब्रह्मत्व, ये सभी स्पष्ट करते हैं, कि आप पूर्णरूप से पिता हैं, पुत्र हैं, एक छोटे शिशु की तरह निश्छल हैं, मां की तरह वात्सल्यमय हैं, पूर्ण सिद्धहस्त आचार्य हैं, वेदमय हैं, शास्त्रमय हैं, पूर्ण तपस्वी हैं, आप सही अर्थों में गृहस्थ हैं, और यदि सही रूप से कहूं, तो पूर्णरूप से प्रेमी हैं, जिसने जिस रूप में भी आपको भजा, उसको उसी रूप में आपने दर्शन दिये, जिसने आपसे जिस रूप की याचना की, उसको आप उसी रूप में दिखाई दिये, जिसकी जो भावना रही, आप उसके साथ उन्हीं भावनाओं के साथ खड़े रहे।

आपके ऐसे दैदीप्यमान स्वरूप को देखकर हजारों योगी, यति, संन्यासी आश्चर्यचकित हैं, क्योंकि मैं ही नहीं, सिद्धाश्रम के समस्त योगी, समस्त संन्यासी इस बात को स्वीकार करते हैं, कि आपके हजारों रूप हैं, आपके जीवन के हजारों प्रकार हैं, और इन सभी प्रकारों को समझना सामान्य मनुष्य के बस की बात नहीं है।।३४।।



॥४०॥

महत्व पूर्णं त्वं विद विद वदारं वहतु नः
सहै प्रेय श्रेय भव विधुर कामः मदन वै ।
स श्रेणं पुष्पं च भवत भव विश्व श्रिय सहै
स धन्यस्त ज्ञेयं महतु मह पूर्ण सह क्रियः ॥



हे दिव्यात्मन्! यों तो आपके सभी स्वरूप उच्चकोटि के और आनन्ददायक हैं, पर आपका प्रेममय स्वरूप सबसे ज्यादा प्रसन्नतादायक और हृदयग्राही है। जब हम आपको हास्य करते हुए, विनोद करते हुए, प्रेम प्रदर्शित करते हुए देखते हैं, तो ऐसा लगता है जैसे वसन्त पुनः प्रवाहित होने लग गया है, पुनः आकाश से अमृत–वर्षा होने लग गई है, पुनः कामदेव ने पुष्पों का शर–संधान कर लिया है, पुनः पृथ्वी पर लाखो–लाखों पुष्प विकसित हो गए हैं और यह सारा विश्व आनन्ददायक बन गया है।

आपके सभी रूपों में प्रेममय रूप अपने आप में अद्वितीय है, आपको इस रूप में देख करके ऐसा लगता है, मानो स्वयं श्रीकृष्ण शरद पूर्णिमा की रात्रि में रासलीला खेल रहे हैं। आपके प्रेममय स्वरूप को देखकर के ऐसा लगता है, मानो स्वयं कामदेव पूर्ण क्रीड़ामय बन गया हो, क्योंकि आपके अंग–अंग से प्रेम छलकने लग जाता है, आपके नेत्र, आपके अधर, आपका चेहरा, आपकी जिह्वा और आपके शरीर का रोम–रोम प्रेममय हो उठता है। वास्तव में ही वे धन्य हैं, जिन्होंने अपने हृदय में आपको समाहित किया है, उनके सामने तो ऊंचे से ऊंचा योगी भी न्यून है, क्योंकि उन्होंने आपके प्रेममय स्वरूप को देखा है, जांचा है, परखा है, अपने आप में समावेश किया है और पूर्णता के साथ आप में समाहित हुए हैं।

आपका यह रूप अन्य रूपों की अपेक्षा ज्यादा श्रेष्ठ है, क्योंकि इस मोहक मुस्कान और स्मित हास्य द्वारा प्रेममय स्वरूप के साथ आपने सम्पूर्ण विश्व, अन्य ग्रह और सिद्धाश्रम को जीत लिया है। समस्त योगी और संन्यासी, गृहस्थ, पुरुष और स्त्रियां, देवता और अप्सराएं आपके इस प्रेममय स्वरूप को देखकर पागल हो उठती हैं।

सही अर्थों में कहा जाय, तो वास्तव में ही उनके पुण्यों का उदय हुआ है, जो आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, जो आपके हृदय के निकट हैं, उनकी तुलना तो देवताओं से भी नहीं की जा सकती।।४०।।



॥४१॥

गुरुर्देवं देवं नहि भवतु शक्यं भ्रमर वै
न सिद्धश्च योगं नहि भ्रमर गुंजै उपवनै ।
मृगी क्षीरै वैं न नहि भ्रमति किन्नं वदतु नः
त्व वार्धक्यं श्रेय भवतु भव नृत्य श्रिय प्रियः ॥



हे देवाधिदेव! आपके न होने से यह सिद्धाश्रम श्मशान की तरह लगता है, कमल मुरझाने लगते हैं, भ्रमर गुंजरण नहीं करते, हिरण कुलाचें नहीं भरते, अप्सराएं प्रफुल्लित नहीं होतीं और साधिकाएं मुरझा जाती हैं, सिद्धयोगा झील भी निष्प्राण और निस्तेज हो जाती है, पर आपकी उपस्थिति मात्र से ही इन सब में नई चेतना आ जाती है।

सिद्धयोगा झील की लहरें गुनगुनाने लग जाती हैं, हिरण और हिरणियां गले से गला सटा कर किलोलें करने लग जाती हैं, किन्नरियां नृत्यमय हो जाती हैं, वायु में एक अपूर्व सुगन्ध प्रवाहित होने लग जाती है।

यह सब आपके व्यक्तित्व, आपकी जीवन्तता, आपकी सप्राणता और आपकी चैतन्यता ही तो है, कि केवल आपकी उपस्थिति से ही सब कुछ बदल जाता है, सभी में जीवन्तता आ जाती है, जमीन का कण–कण अपने आप में उत्सवमय बन जाता है।

हजारों वर्षों की आयु प्राप्त वे संन्यासी, जो साधनारत हैं, अपनी–अपनी साधनाओं को छोड़कर आपको निहारने लग जाते हैं, उनके वृद्ध और जर्जर चेहरों पर स्मित हास्य आ जाता है और उन अप्सराओं के तो सारे शरीर में एक विद्युत सी प्रवाहित हो जाती है, ऐसा लगता है जैसे उनके पैर पृथ्वी पर नहीं हों, वे वायु में ही नृत्य कर रही हों।

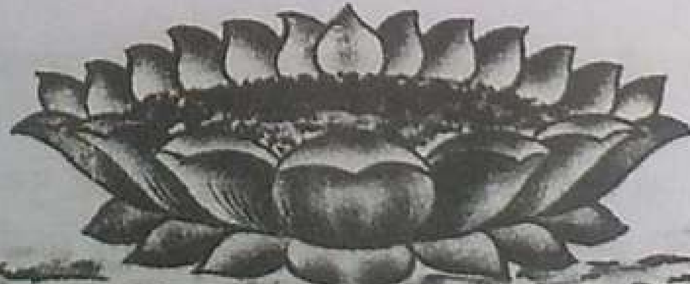
यही नहीं अपितु समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और संन्यासी एकदम से उत्साहित होकर प्रेममय बन जाते हैं।

मैंने तो यहां तक देखा है, कि स्वयं परमहंस गुरुदेव **"स्वामी सच्चिदानंद जी"** के चेहरे पर भी एक अपूर्व आभा और सन्तुष्टि का भाव झलकने लग जाता है। आपका साहचर्य और मात्र आपकी उपस्थिति किसी भी प्रकार की स्थिति में पूर्णता प्रदान करने में समर्थ और सक्षम है। आपका व्यक्तित्व अपने आप में अपूर्व है, जिसमें विभिन्न स्वरूपों का समावेश है, ऐसा व्यक्तित्व इससे पूर्व पृथ्वी ग्रह पर कभी नहीं हुआ, यह निश्चित है।। **४१** ।।



॥४२॥

कृतज्ञं ज्ञेयं च श्रिय वद न पूर्ण भवतु नः
स ब्रह्माण्ड क्षौणं सहि महि त्व वेद विध विंधा ।
समस्तं चैतन्यं श्रिय सह महौ पूर्ण इति च
सधन्यस्त ज्ञेय निखिल गुरुवै वैं श्रिय नतः ॥



– हे! सिद्धेश्वर, हम सिद्धाश्रम के ही नहीं, अपितु समस्त भूमण्डल के योगी, यति, संन्यासी आपके प्रति कृतज्ञ हैं, क्योंकि आपने लुप्त संस्कृति को पुनर्जीवित किया; समाप्त प्रायः ग्रन्थों को जीवन दान दिया, संस्कृति का पुनरुद्धार किया और हमारे पूर्वजों की थाती तथा ब्रह्माण्ड के रहस्य, जो लुप्त हो गए थे, उन्हें पुनः प्रकट किया। वेद, उपनिषद, मीमांसा, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि जितनी भी विद्याएं हैं, उन सभी विद्याओं को आपने पूर्णता दी। यह सब एक व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता, युग पुरुष के द्वारा भी सम्भव नहीं हो सकता, यह तो अद्वितीय विभूति, जब पृथ्वी पर अवतरित होती है, तभी सम्भव होता है।

एक साथ हजारों विभिन्न प्रकार के कार्य करना और उनको पूर्णता देना कोई सामान्य बात नहीं है। जिस क्षेत्र में भी आप खड़े होते हैं, वह अपने आप में ही सम्पूर्ण हो जाता है।

आपने भारतीय संस्कृति का कोई कोना अछूता नहीं छोड़ा, लुप्त प्रायः विद्याओं में से किसी को आपने न्यून नहीं रहने दिया, जिससे कि आने वाली पीढ़ियां उसका लाभ उठा सकें।

वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति, श्रुति, आयुर्वेद, तत्व ज्ञान, साधना, सिद्धियां, मंत्र–तंत्र, ज्योतिष और जितनी भी प्राचीनतम विद्याएं हैं, उन सबको आपने स्पर्श कर अपनी वाणी के द्वारा पुनर्जीवित किया है, चेतनामय किया है, पूर्णता दी है, श्रेष्ठता दी है, सम्पन्नता दी है और पूर्णता दी है।

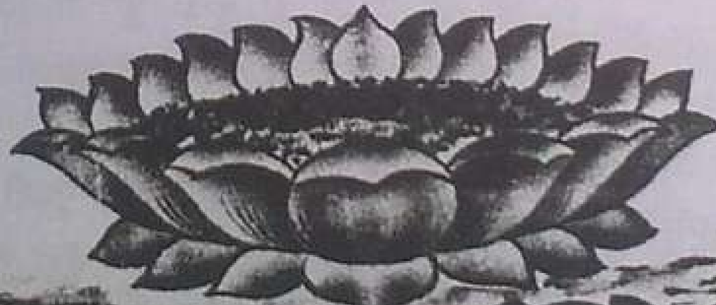
ऐसा व्यक्तित्व करोड़ों वर्षों के बाद ही इस पृथ्वी पर आता है, और यह हमारी शताब्दी का सौभाग्य है, कि आप इस समय पृथ्वी ग्रह पर हैं। आपने सिद्धाश्रम को सम्पूर्ण भूमण्डल का आध्यात्मिक चेतना केन्द्र बनाया और पूरी पृथ्वी पर भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय स्थापित किया। इसके लिए वर्तमान विश्व और आने वाली पीढ़ियां आपके प्रति कृतज्ञ रहेंगी, और जिन्होंने भी आपके साथ कुछ क्षण बिताए हैं, उनका नाम इतिहास में स्मरणीय रहेगा।।४२।।





॥४३॥

गुरुदेव श्रेय वदनं भव नित्य देवं
कह वद निखिलत्वं पूर्ण मंत्र इति वैं ।
सह त्वं वै यज्ञ मंत्र तंत्रं त्वरौ यै
सह श्रिय वद ज्ञानं भजतु पूर्णं वदौ नः ॥



हे दिव्येश्वर! हम न तो तंत्र जानते हैं और न मंत्र का ही ज्ञान है, न हम भली प्रकार से स्तोत्र का उच्चारण कर सकते हैं और न ध्यान, पूजा–पाठ, जप–तप आदि। हम तो केवल **"निखिल"** मंत्र को ही जानते हैं और इस मंत्र का भी पूर्णता के साथ उच्चारण नहीं कर पाते। जिस प्रकार यदि छोटा बालक तुतलाती भाषा में अशुद्ध शब्द उच्चारण करे, तो पितामह उसकी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देते, उसी प्रकार से हम जो कुछ भी कहते हैं, वह तुतलाती भाषा में ही है; आप इन त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए हमें पूर्णता की ओर अग्रसर करें।

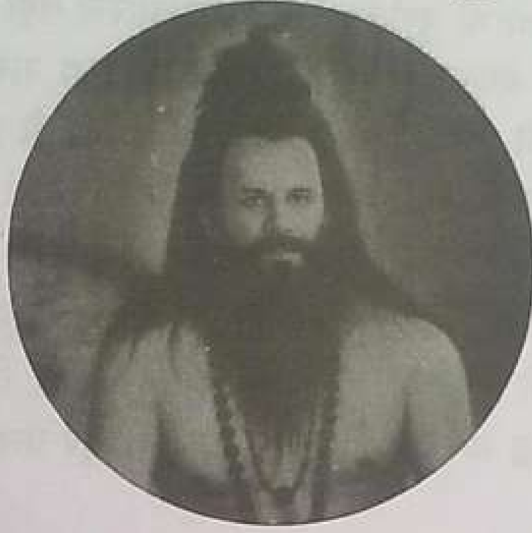
जब आप दूसरे मंत्र देते हैं, जब आप दूसरे देवताओं की आराधना करने को कहते हैं, तो हमें ऐसा लगता है, कि जैसे आप हमें मायाजाल में आबद्ध कर रहे हैं, अपने आप से दूर करने की क्रिया कर रहे हैं।

आप विशुद्ध ढंग से स्पष्ट कीजिए, कि क्या आपके चरणों में समर्पण भाव रखने की अपेक्षा दूसरी कोई साधना–उपासना है?

क्या आप में समाहित होने से ऊंचा कोई तत्व ज्ञान है?

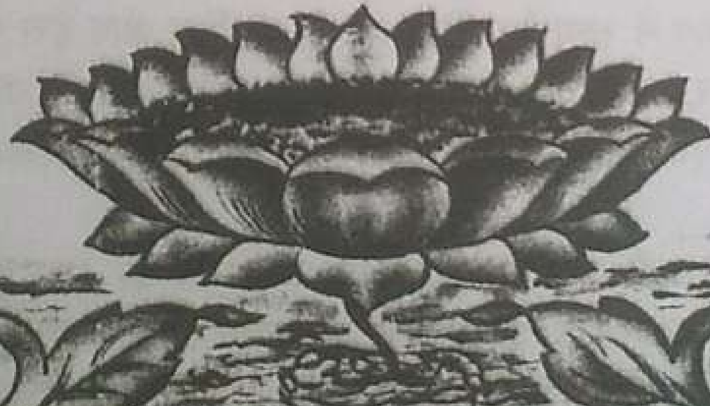
क्या 'निखिल' शब्द से भी ऊंचा कोई मंत्र या साधना है? क्या आपके दर्शन करने से भी ज्यादा श्रेष्ठ कोई देवालय है? क्या आपके शरीर से भी बड़ा कोई ब्रह्माण्ड है? जब मैं ही नहीं सिद्धाश्रम का प्रत्येक योगी और संन्यासी इस बात को स्वीकार करता है, कि आप अपने आप में सम्पूर्णता लिए हुए हैं, तो फिर आप इस मायाजाल में आबद्ध कर, अन्य देवी–देवताओं की साधना कराकर क्या चाहते हैं? यह तो एक भटकाने की क्रिया हो गई, एक माया का आवरण हो गया।

आप सही अर्थों में पूर्णता के परिचायक हैं, आप सही अर्थों में वेदमय हैं, तत्वमय हैं, ज्ञानमय हैं, चेतनामय हैं। हम सभी सिद्धाश्रम के योगी और संन्यासी आपको भक्ति–भाव से प्रणाम करते हुए, आपके मंत्र को पूर्णता के साथ शरीर के रोम–रोम में बसा लेना चाहते हैं, ऐसा ही आप हमें आशीर्वाद प्रदान करें।।४३।।



॥४४॥

नहि भव छल धूर्त दोष पाप प्रपंच
नहि भवतु शक्य सारं पूर्ण वै शीर्ण नित्यं ।
धूलि श्रे श्रीर्म नित्यः प्राप्त प्रेम श्रियं वै
त्वं दोष मुक्त रूपं निखिल मे पूर्ण त्वं दः ॥

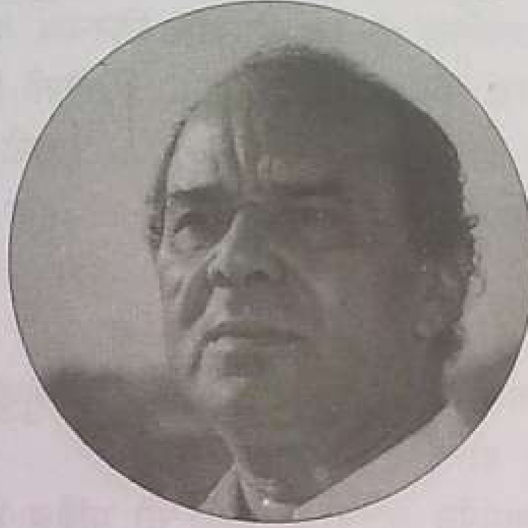


हे परमोद्धारक! हम सांसारिक प्राणी हैं और सांसारिक छल–प्रपंचों से घिरे हुए हैं, हमारा मुंह असत्य से मलिन हो गया है, पाप कर्म से हमारा शरीर दोष युक्त बन गया है, कुदृष्टि से हमारे नेत्र मलिन और अपवित्र हो गए हैं, और निरन्तर कुतर्कों से हमारा चित्त भ्रमित, अपवित्र और पापमय हो गया है, ऐसी स्थिति में हम न तो अपने मन को आपके चरणों में भेंट चढ़ा सकते हैं और न इस गंदे, अपवित्र शरीर को ही। हम यह भी नहीं कह सकते, कि हम तन–मन से आपके हैं, हमारा शरीर अपने आप में गन्दगी से भरा हुआ है, जिसमें मल मूत्र, श्लेष्म, थूक, मज्जा, लार के अलावा कुछ नहीं है, हमारे विचार अपने आप में न्यून और कुबुद्धि युक्त हैं, जो केवल आलोचनाएं ही देख पाते हैं।

आपको समर्पित करने के लिए तो पवित्र देह चाहिए, शुद्ध व्यक्तित्व चाहिए, मन और चित्त अपने आप में सात्विक होना चाहिए, और हम ऐसे नहीं हैं, इसलिए हम इस शरीर को आपके चरणों में समर्पित करने की धृष्टता नहीं कर सकते। हमारे पास तो देने के लिए कुछ है ही नहीं, आप ही अपनी कृपा–दृष्टि से हमें पवित्र और दिव्य बना सकते हैं।

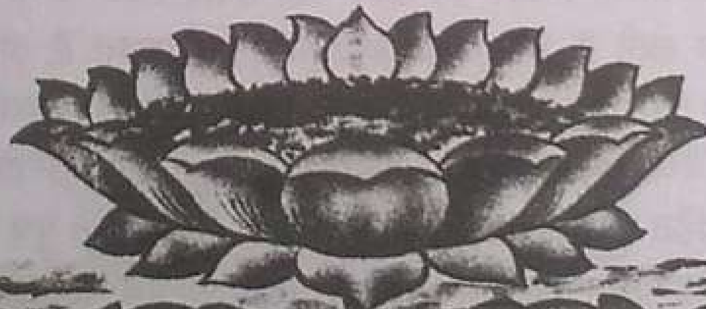
हम ठीक उसी प्रकार से हैं, जिस प्रकार से एक छोटा सा बालक होता है, जिसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता, फिर भी मां उसे अपने सीने से लगा लेती है, हम भी उसी प्रकार से शिशुवत हैं; आपकी कृपा दृष्टि मां की तरह बनकर हमें अपने सीने से लगा ले, जिससे कि हम पवित्र और दिव्य बन सकें, और आपके चरणों में समर्पित होकर पूर्णता के साथ समाहित हो सकें। जिस प्रकार से एक पिता अपने पुत्र के अपराधों को क्षमा करता हुआ, धूल से सने हुए छोटे से पुत्र को गोदी में उठा लेता है, उसी प्रकार से आप हमें अपना लें।

हम तो माया– मोह के अन्धकार में भटक रहे हैं और सांसारिक यातनाओं से सारा शरीर छिद गया है, ऐसी स्थिति में आप ही हमारा उद्धार कर सकते हैं।।४४।।



॥ ४५ ॥

नहि भवति ज्ञान सत्यं सिद्ध वै यौवने त्वं
अहि भ्रमति नद समुद्रे जर्जरि रूप नित्यं ।
त्वं पूर्ण पोत भवने भव नित्य देवं
अह आर्तनाद वदने 'गुरु' रूप श्रेयं ॥



हे प्रभु! बचपन में मैं अज्ञानी था और मुझे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। युवावस्था में विषय–वासनाओं में लिप्त रहा और साधना के मूल्य व महत्व को नहीं समझा। मेरे घर के और परिवार के संस्कार भी ऐसे नहीं हैं, कि मैं इन विषयों की ओर बढ़ पाता। मैं तो जंगल में भटकता हुआ एक निरीह प्राणी हूं , जिसकी मदद करने वाला कोई नहीं है। मैं समुद्र में बहता हुआ एक विपत्ति ग्रस्त प्राणी हूं, जिसका उद्धार करने वाला कोई नहीं है। ऐसी स्थिति में आप ही सहायता नहीं करेंगे, तो पृथ्वी पर फिर अन्य किसी से भी उम्मीद करना व्यर्थ है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शक्तियां, देवी–देवता सभी तो आप में समाहित हैं, और इसीलिए मैं केवल दो अक्षर "**गुरु**" शब्द का ही उच्चारण करता हुआ सहायता के लिए याचना करता हूं, कि आप मुझे इस विपत्ति से बचा कर पूर्णता की ओर अग्रसर करें। यदि ऐसी स्थिति में आपने उंगली नहीं थामी, तो देवता भी मेरी सहायता नहीं कर सकते, यह ध्रुव सत्य है, और यदि ऐसा हुआ, तो इस जीवन का क्या प्रयोजन है?

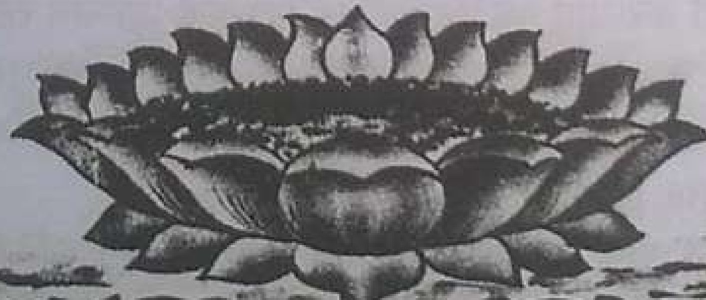
यह जीवन तो श्मशान की ओर बढ़ रहा है और एक दिन श्मशान में जाकर सो जायेगा, सारा जीवन ही अकारथ और व्यर्थ चला जायेगा। जिन कारणों से प्रभु ने हमें जन्म दिया है, यदि हम उन कारणों को ही प्राप्त नहीं कर पाये, तो फिर जीवन का कोई प्रयोजन रहेगा ही नहीं, क्योंकि जब तक हम अपने मन, प्राण और रोम–रोम से 'गुरु' शब्द का उच्चारण नहीं कर सकेंगे, तब तक हमारा जीवन विषय–वासना युक्त व दुर्गन्ध युक्त ही रहेगा।

'गुरु' शब्द तो अपने आप में ही अन्यतम और अद्वितीय है, और फिर आप जैसा गुरु हमें मिल जाए, इससे ऊंचा और स्थान क्या हो सकता है? हे! प्रभु, कुछ ऐसी कृपा कीजिए, कि आप हमें शिष्य कह सकें और हम आपके चरणों में पूर्णरूप से समर्पित होते हुए, 'गुरु' शब्द का उच्चारण करते हुए, आप में लीन हो सकें।। **४७**।।



॥४६॥

गुरुवर प्रभु पूर्ण त्वं वदं देव रूपं
भवति जन्म मौक्ष भ्रमति वै निर्निमेष ।
नहि वद जानंति त्वं वदे पूर्ण श्रेयं
मह देव देव नित्यं त्वां गति त्वं प्रपद्ये ॥



हे गुरुदेव! इस संसार में आपके चरणों से दूर रहते हुए मैं कई जन्म भोग चुका हूं, और यह बात भी सत्य है, कि कई–कई जन्मों से आप मेरे साक्षीभूत गुरु हैं, हर बार आप मुझे आवाज देते हैं, हर बार आप मुझे कुमार्ग से हटा कर साधना–पथ पर अग्रसर करते हैं, हर बार आप मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं; पर मैं ही दुर्भाग्यशाली हूं, कि बार–बार भटक जाता हूं, मैं ही नीच और अधम व्यक्ति हूं, कि आपको भली प्रकार से समझ नहीं पाता तथा व्यर्थ का संदेह मन में लाकर आप से अलग हट जाता हूं, और इसीलिए मुझे बार–बार मल–मूत्र से भरे हुए जीवन को जीना पड़ता है।

अब तो जीवन में केवल एक ही भावना रह गई है, कि मेरे हृदय में आप पूर्णरूप से स्थापित हो सकें, और मेरे नेत्रों में वह दिव्यता जाग्रत कर सकें, जिससे कि मैं भली प्रकार से आपको पहिचान सकूं। मैं बार–बार जन्म लेकर, इस मल–मूत्र में, इस गन्दगी में लिप्त होकर अपने आप को दुःखी और व्यथित नहीं करना चाहता।

अब तो मेरी केवल एक ही इच्छा और आकांक्षा रह गई है, कि मेरा कोई अस्तित्व रहे ही नहीं, मेरा कोई नाम नहीं रहे, मेरी कोई भावना नहीं रहे, मेरा कोई चिन्तन नहीं रहे; छाया की तरह आपके साथ रहूं, आपके अन्दर समाविष्ट होकर पूर्णरूप से आपके हृदय में स्थान पा सकूं, जिससे कि मैं इस आवागमन के बन्धन से मुक्त हो सकूं उस "**पूर्ण तत्व**" को अनुभव कर सकूं, जो जीवन का पर्याय है, जो जीवन का हेतु है, जो जीवन का चिन्तन है।

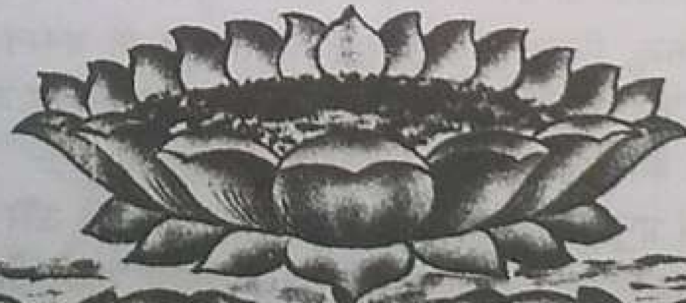
हे! प्रभु, मैं ही नहीं, जितने भी मेरे संन्यासी और गृहस्थ गुरु भाई–बहिन हैं, वे भी इसी प्रकार की आकांक्षा रखते हैं, कि आपके हृदय में स्थान पा सकें; जिससे जीवन धन्य हो सके और उनके जीवन में पूर्णता स्थापित हो सके।

मैं उनकी तरफ से और अपनी तरफ से भी ऐसे ही आशीर्वाद का आकांक्षी हूं।।४६।।



॥ ४७॥

गुरुवर महि मौक्ष पूर्ण पोत भवेत्तं
नहि शक्यत् भव देवं पुलत ज्ञानंद चेद्वे ।
'गुरु' वद वद मंत्र चरण त्वां पूर्ण सिन्धु
अह महि भव आर्त्त नाद त्वं पूर्ण नित्यं ॥



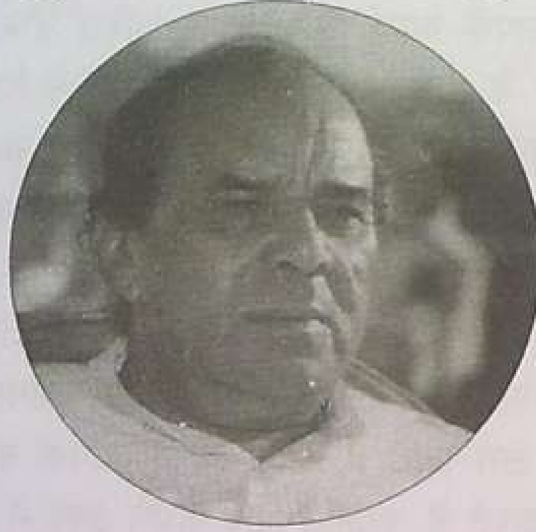
हे पारमेष्ठिन्! इस सिद्धाश्रम के अन्दर और बाहर कई योगियों और सैकड़ों वर्षों की आयु प्राप्त संन्यासियों ने आपकी स्तुति की है, आपके चरित्र का और गुणों का वर्णन किया है, फिर भी उन्होंने स्वीकार किया है, कि वे आपके कार्यों को, आपके चरित्र और गुणों को शब्दों में नहीं बांध पाये। वे आपके ज्ञान की गहराई में जितना ही ज्यादा जाने का प्रयत्न करते हैं, उतनी ही गहराई और प्रतीत होती है।

महर्षि पुलस्त्य, महिश्वा, ज्ञानानन्द आदि भी आपकी थाह नहीं पा सके। वे सैकड़ों–हजारों वर्षो की साधना करने के बाद भी आपका सौवां हिस्सा भी अनुभव नहीं कर सके, वे जितनी और ज्यादा तपस्या–साधना करते हैं; उससे अधिक आपकी महिमा मंडित विराट्ता को अनुभव करने लग जाते हैं, और तब वे आपके सामने अपने आप को बौना अनुभव करते हैं, क्योंकि आप अपने आप में पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं, और पूर्ण ब्रह्म अपने आप में अथाह और असीम होता है, उसका एक भी अंश, जिसको प्राप्त हो जाता है, वह अपने आप में अद्वितीय बन जाता है।

उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है, कि जितनी बार भी आपकी पूर्णता को जानने का प्रयत्न किया है, उतनी ही बार उन्होंने आपको और अधिक ऊंचाई पर अनुभव किया है, देखा है। हर बार उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है, कि हजार–हजार जन्म लेकर भी वे आपकी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकेंगे, फिर मैं तो एक सामान्य ब्रह्मवेत्ता ऋषि हूं, मैं किस प्रकार आपके गुणों को और आपकी महिमा को समझ सकता हूं।

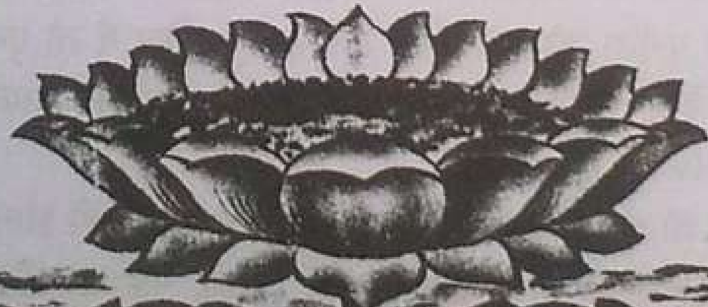
मुझे तो केवल दो अक्षरों के, **''गुरु''** शब्द का ही ज्ञान है, इसके अलावा मैं अन्य मंत्रों की इच्छा भी नहीं रखता, मुझे आपके चरणों की अपेक्षा और किसी देवी–देवता के दर्शन करने की इच्छा भी नहीं है; मैं तो पूर्णरूप से आपके प्रति समर्पित हूं।

आप मुझे इस गुरु रूपी नाव से भवसागर पार करा देंगे, ऐसा ही विश्वास है।।४७।।



॥४८॥

अह भव मद योगी वेद पांग त्व पूर्ण
भव रूप महत् योगी पूर्ण सिन्धुं वदन्त्र ।
त्वं नाम रूप जपतुं भव सिद्ध योगीर्न तत्वं
त्वं नाम सिद्धि भवतुं भव, पूर्ण ज्ञानं तपस्वं ॥



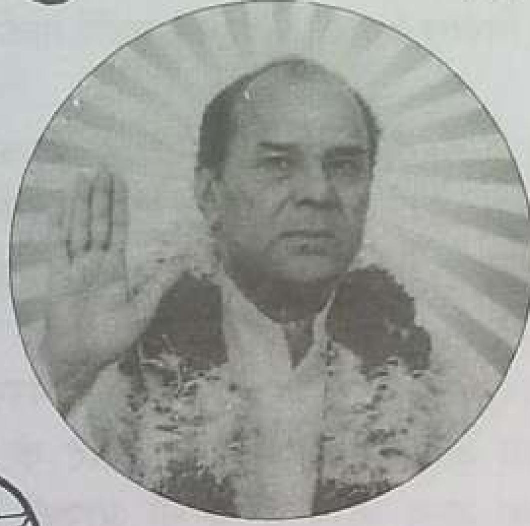
हे गुरुदेव! मैं इस बात का साक्षी हूं, कि केवल "निखिल" शब्द का उच्चारण कर योगी वेदपांग पूर्ण तत्ववेत्ता बन गये। केवल आपकी साधना कर सिद्धाश्रम के योगी महत्स्य समस्त साधनाओं और सिद्धियों में पारंगत हो गये। निरंतर आपकी सेवा कर महर्षि मार्कण्डेय पूर्ण ब्रह्मर्षि बन गये।

इन लोगों ने न तो कोई अन्य साधना की और न कोई मंत्र जप ही, और आज ये ब्रह्माण्ड के श्रेष्ठ ऋषियों में गिने जाते हैं। एक नहीं ऐसे सैकड़ों उदाहरण मैं प्रस्तुत कर सकता हूं, जिन्होंने केवल आपके चरणों को स्पर्श कर ही पूर्णता प्राप्त की है।

योगी दिव्यानंद, स्वामी चेतनानंद, परमहंस पूर्णानंद, अद्वैतानंद, ज्ञानानंद और जितने भी उच्चकोटि के महर्षि पुलस्त्य, कणाद, गौतम तथा अन्य ऋषि हैं, वे भी आपकी सेवा करके ही, आपके चरणों को स्पर्श करके ही, आपकी कृपा–दृष्टि प्राप्त करके ही 'पूर्ण ब्रह्मर्षि' पद प्राप्त कर सके हैं, और 'आत्म–तत्व' जाग्रत कर 'ब्रह्म–तत्व' का अनुभव कर सके हैं, क्योंकि आप अपने आप में ही दिव्य हैं, चेतनामय हैं।

केवल आपके सान्निध्य में रहकर, आपकी सामीप्यता का लाभ उठाकर और आपकी सेवा करके ही जीवन में वह सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, जो हजारों वर्षों की तपस्याओं और साधनाओं के माध्यम से भी प्राप्त नहीं हो सकता।

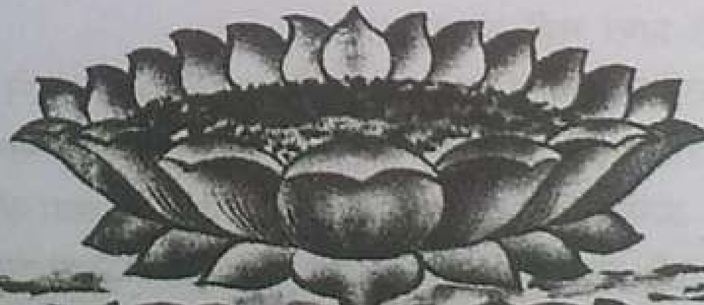
वास्तविक रूप में देखा जाय, तो आपकी सेवा करने से समस्त सिद्धियां निश्चित रूप से प्राप्त होती ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। आपका नाम, आपका चिन्तन, आपका स्मरण, आपकी सेवा और आपका साहचर्य ही सही साधना है, पूर्ण तपस्या है, क्योंकि जहां आप हैं, वहां समस्त सिद्धियां हैं, और जिस पर भी आप अपने नेत्रों से ज्ञान वर्षा कर देते हैं, वह सौभाग्यशाली व्यक्तित्व बन जाता है, फिर उसकी तुलना तो कोई कर ही नहीं सकता, किन्तु यह तभी सम्भव है जब आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त हो।।४८।।





॥४९॥

न तत्रं मंत्रं न स्तुति न व च ज्ञानं भवविधि
विकारं मोहस्त्वं किम तद अतस्त्वं अर्पितं ।
त्व दृष्ट्वं साहचर्यं तव चरण सेवा मम हितै
न देवो न अन्यं तव गुरु वदं त्व अत तवं ॥



हे भव्यमूर्ति! न तो मैं मंत्र जानता हूं, न तंत्र न योग जानता हूं, न दर्शन, न शास्त्र का ज्ञान है मुझे और न सही ढंग से मंत्र–जप ही करना आता है। मुझे तो स्तुति करनी भी नहीं आती, मैं तो यह भी नहीं जानता, कि किस प्रकार से आपकी आराधना करूं?

मेरा शरीर भी कई प्रकार के विकारों से ग्रस्त है, मैला है, गंदा है। कभी–कभी इसमें काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद की प्रवृत्तियां भी आ ही जाती हैं, इन पंच–प्रवृत्तियों से ग्रसित शरीर मैं आपके चरणों में कैसे अर्पित करूं?

मैं किसी भी प्रकार की आराधना नहीं जानता, मैं यह भी नहीं जानता कि यज्ञ क्या है और पूजा–पाठ क्या है? तपस्या क्या है और साधना क्या है? अर्चना क्या है और बोलने का तरीका क्या है? और न ही मुझे इन सबकी आवश्यकता है। मैं तो केवल इतना ही जानता हूं, कि आप मेरे आराध्य हैं।

मेरे लिए तो अर्चना–आराधना, पूजा–पद्धति, जप–तप, योग–दर्शन, मीमांसा, ध्यान, धारणा तथा समाधि जो कुछ भी कहें, केवल मात्र आपके दर्शन हैं, केवल आपका सत्संग है, केवल आपका साहचर्य है, केवल आपके साथ बैठने की पद्धति है। केवल यही एक क्रिया है, कि मैं किसी भी तरीके से आपका सान्निध्य प्राप्त करूं, सही अर्थों में आपका शिष्य कहला सकूं, आपके ओठों पर मेरा नाम आ सके, आप मुझे भुजाओं में भर सकें, मैं कभी आपके सीने से लग कर आंसू बहा सकूं।

मैं दासानुदास, अकिंचन, दीन–हीन, मलीन, विषय–वासनाओं से युक्त, आपका हूं, और यह स्थिति मैं संसार की श्रेष्ठतम स्थिति मानता हूं।

यह सब कुछ आपका ही है, और एकमात्र आप ही मेरे हैं, आपके अलावा इस ब्रह्माण्ड में कोई और मेरा है ही नहीं, किसी और को मैं अपना मानता ही नहीं। मुझे विश्वास है, कि आप अत्यन्त कृपालु, दयालु, स्नेही हैं, आप मुझे अपना लें, यही मेरा सौभाग्य है।।४१।।



॥५०॥

अहं सौभाग्यं वै तव चरण सेवा मम वदं
गतस्त्वं कालोऽपि अह च मद दृष्ट्यं भ्रमयति ।
तवै सौभाग्यं वै चरण रज प्राप्त्यै भव निधि
मदीयं दासोऽपि गुरुवर भुजा वै भव वदै ॥



हे परमाराध्य गुरुदेव! इस दुनिया में सैकड़ों–हजारों गृहस्थ शिष्य भी हैं, और आपने सिद्धाश्रम में बताया था, कि जो भी शिष्य पिछले जन्म से आपसे जुड़े हुए हैं, उनको आप ढूंढ निकालते हैं। दोनों ही स्थितियां बन रही हैं, शिष्य दूर–दूर से आकर आपसे मिलते हैं और हमेशा के लिए आपके ही हो जाते हैं, और आप स्वयं भी उन स्थानों पर जाते हैं, जहां पर आपके शिष्य हैं, जिनकी आंखों पर एक परदा सा पड़ा है, जिनको स्मरण नहीं है आपका, मगर ज्योंही वे आपको देखते हैं, उनमें एक कौंध सी पैदा होती है और वे आपसे जुड़ जाते हैं।

आपने बताया था, कि जितने भी शिष्य पिछले जीवन से आपसे जुड़े हुए हैं, जो कई–कई जन्मों से आपके साथ रहे हुए हैं, अज्ञान का या किसी और प्रकार का परदा उनकी आंखों पर पड़ा हुआ है, तो उसे दूर करने का आप प्रयत्न करते रहते हैं, और लगभग उन सभी शिष्यों को एक बार पुनः बता देना चाहते हैं, कि बिना शिष्य बने, बिना समर्पण किये पूर्णता सम्भव नहीं है।

पिछले काफी समय से मैं देख रहा हूं, कि आप भ्रमण पर हैं, न आपको अपने शरीर की चिन्ता है, न परिवार की, न घर की, न गृहस्थ की, न अन्य किसी सुख की और न ही अन्य किसी कार्य की।

आपके मन में केवल एक ही चिन्ता, एक ही विचार, एक ही धारणा है, कि मैं इन सारे शिष्यों को एक बार यह स्मरण दिला दूं, कि मैंने तुम लोगों से जो वायदा किया था, उसे पूरा कर रहा हूं, मैं तुम्हें ढूंढ रहा हूं, मैं तुम्हें अपना स्पर्श दे रहा हूं, मैं तुम्हें उस रास्ते पर खड़ा कर रहा हूं, जिस रास्ते पर चलकर तुम पूर्णता तक पहुंच सको।

वास्तव में ही वे सौभाग्यशाली हैं, जिन पर आपकी कृपा दृष्टि है, जिन्होंने आपके चरणों में अपना सिर रखा है, जिनका आपने हाथ पकडा है, और बहुत ही कम ऐसे लोग होंगे, जिन्होंने आपकी कृपा प्राप्त की होगी।। ५०।।



॥५१॥

गतस्त्वं सिद्धोपि गलित मद अश्रुर्वद मनै
अतौ काठिन्यं वै महत दुःख पीड़ा विनु त्वयं ।
अथः शिष्यौ संगे यदि भवत् सिद्धौ प्रभवरं
कृपा कल्याणं त्वं निखिल भव शक्यं सद मदै ॥



हे परम रमणीय गुरुदेव! जब आप इन गृहस्थ शिष्यों को अचानक यह कहेंगे, कि मैं अपना कार्य समाप्त कर सिद्धाश्रम लौट जाना चाहता हूं, तो निश्चय ही उनको गहरा धक्का लगेगा, उनके पैरों की गति समाप्त हो जाएगी, उनके हाथों की कार्यकुशलता समाप्त हो जाएगी, उनके चेहरे पर उदासी छा जाएगी, आंखों से अश्रुधार प्रवाहित होने लग जाएगी, उनका गला अवरुद्ध हो जाएगा और सम्भवतः कई शिष्य इस झटके को सहन नहीं कर सकेंगे।

मगर आप मायावी हैं, माया फैलाते रहते हैं, आप धीरे–धीरे उनसे परे हटने की क्रिया करते रहते हैं, धीरे–धीरे उनको एहसास दिलाते रहते हैं, कि मेरे बिना भी तुम्हारा अस्तित्व चलता रहता है, मगर फिर भी मैं समझता हूं, कि जब आपका विछोह हम जैसे संन्यासी और योगियों के लिए अत्यधिक दुःखदायक है, तो उनके लिए कितना संताप युक्त, दुःखदायक और पीड़ा युक्त होगा, इसकी तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है।

मैं तो चाहता हूं, कि आप उन सभी शिष्यों को भी सिद्धाश्रम में लेकर आयें, यद्यपि यह कठिन कार्य है, क्योंकि अभी वह योग्यता नहीं है, अभी उनमें वह उच्चता नहीं है, अभी उनमें वह समर्पण नहीं है, अभी उनमें वह पूर्णता नहीं है। फिर यह समर्पण और पूर्णता उन्हें कौन देगा? आपके द्वारा ही तो सम्भव है। उनको यह रास्ता कौन बताएगा? आपके द्वारा ही तो सम्भव है।

आपने तो न्यून साधना सम्पन्न संन्यासियों को भी सिद्धाश्रम में लाकर खड़ा कर दिया था, आपकी उस दृढ़ता के आगे सभी नतमस्तक थे, उनको यह स्वीकार करना पड़ा, कि "**निखिलेश्वरानंद**" दृढ़ निश्चयी हैं।

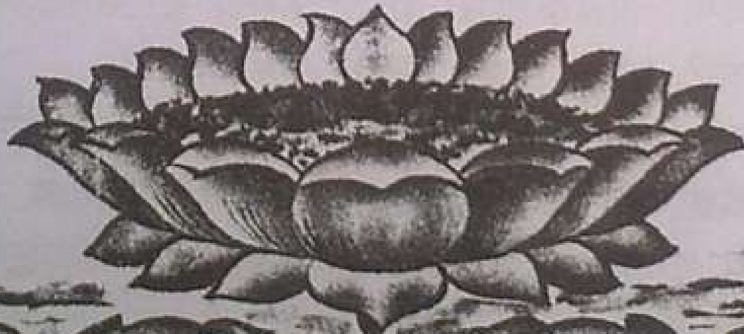
यदि ऐसा ही कोई कार्य इन गृहस्थ शिष्यों के लिए कर सकें, तो उनके जीवन का कल्याण हो सकेगा।

मैं उनकी तरफ से भी आपसे इस आशीर्वाद की आकांक्षा रखता हूं।।**५१**।।



॥५२॥

तपोपेता सिद्धा परमपि सहन्ते विरहजं,
प्रबोधं प्राबल्यं शुचितरमुदारं गृहगताः ।
अतो वै त्वं पूर्णं परिचरतूपायं शिवमयं
विधानमेकं च श्रुति सुखकरं शान्त सुभगम् ॥



नारी हृदय तो अत्यन्त सहृदय और अत्यन्त कोमल होता है। वह तो एक स्वच्छ दर्पण की तरह होता है, जहां एक हल्का सा वायु का झोंका भी उसको मलीन कर देता है, गृहस्थ साधिकाओं के मन में आपके प्रति अपनत्व है, जब आपने कहा, कि मैं सिद्धाश्रम जा रहा हूं, आप सबको छोड़कर जा रहा हूं, यह बात तो सोचना ही उनकी कल्पना से परे थी।

क्या वे आपको छोड़कर सही ढंग से सांस ले पा रही हैं?

क्या वे आपको छोड़कर सही ढंग से जीवन यापन कर पा रही हैं?

ऐसी आशंका मैं ही नहीं, अपितु सिद्धाश्रम की समस्त साधिकाओं ने व्यक्त की है।

उन साधिकाओं के मन में आपके प्रति अत्यधिक कारुण्य है, अपनत्व है, उनकी आंखों में अश्रुकण झलक रहे हैं, क्योंकि जब हम तपस्या करने के बावजूद भी बिना उनके दर्शन के बिखरने लग जाते हैं, फिर वे तो गृहस्थ साधिकाएं हैं, उनके हृदय की स्थिति तो अपने आप में ही छिन्न-भिन्न हो गई हैं।

प्रभु! उनकी रक्षा करते हुए आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे कि वे इस सिद्धाश्रम में प्रवेश पा सकें। यद्यपि मेरा यह कथन मर्यादा के विपरीत है, यद्यपि यह सम्भव नहीं है, यद्यपि सिद्धाश्रम में प्रवेश के नियम अत्यधिक कठोर और कठिन हैं, परन्तु फिर भी उन साधिकाओं की तरफ से जो संदेश मुझे मिला, उसको कहना मेरा कर्त्तव्य है, धर्म है।

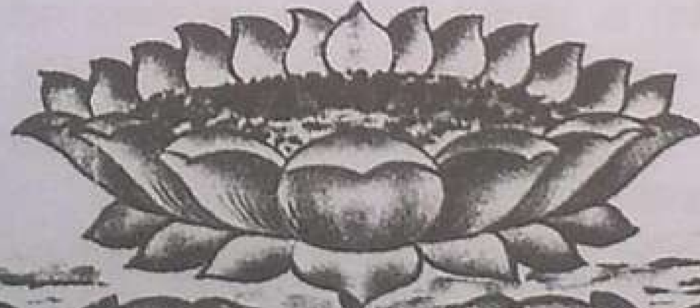
इसीलिए मैं उनकी तरफ से आपसे निवेदन कर रहा हूं, कि उन साधिकाओं और साधकों को कुछ ऐसी साधनाएं आप दें, कुछ ऐसी क्रिया-पद्धति आप दें, जिससे कि वे निरन्तर आपके साथ रहते हुए, चाहे वह गृहस्थ जीवन हो, या संन्यास जीवन हो, अपने जीवन को पूर्णता दे सकें।

ऐसी ही हम सब आपसे अभ्यर्थना कर रहे हैं।।५२।।



॥५३॥

परीतं पूर्णं च स्थिर मुपगत माश्रम पदम्
नवार्धक्यं दुःखं नहि मृतिभयं न बिनु त्वयं।
त्वमेकं शारण्यं मनुग्रहतु धन्यं वितरतु
मनोहारी मुग्धं दिनद्युतिमयं शान्तसुखदम्॥



हे प्रभु! सिद्धाश्रम तो अपने आप में स्वर्ग से भी ज्यादा सुन्दर, मनोहर और मुग्ध कर देने वाला है, जहां की हवा में एक ताजगी है, जहां कल्पवृक्ष सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला है, जिसके तले बैठकर जीवन की सारी इंच्छाओं को, चाहे वे भौतिक हों या आध्यात्मिक हों, पूर्णता दी जा सकती है।

सिद्ध योगा झील में जो गतिमयता है, जो तरंगें हैं, जो लहरें हैं, जो उसका नर्तन है, उसकी तो कोई तुलना ही नहीं है, ऐसे अनुपम सौन्दर्य को कौन नहीं देखना चाहेगा! ऐसे मनोमुग्धकारी लोक में तो देवता भी आने के लिए तरसते हैं।

यहां पर न तो मृत्यु का भय है, और न ही वृद्धावस्था का, न यहां पर दुःख है, न चिन्ता; केवल एक सौन्दर्य है, एक आनन्द है, एक मांधुर्य है। इन सब का अनुभव गृहस्थ साधक और साधिकाओं को भी होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में भाव आ रहा है, वे भी इस अनुपम और अद्वितीय सिद्धाश्रम में आ सकें, चाहे एक क्षण के लिए ही सही।

आप तो कुछ भी करने में समर्थ हैं। जिस पर भी आपने अपना हाथ रखा है, जिसको भी आपने स्पर्श कर दिया है, उसे तो सभी अपनाते ही हैं। मुझे विश्वास है, कि आपकी बात को परम गुरुदेव **''परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी''** भी नहीं टाल सकेंगे।

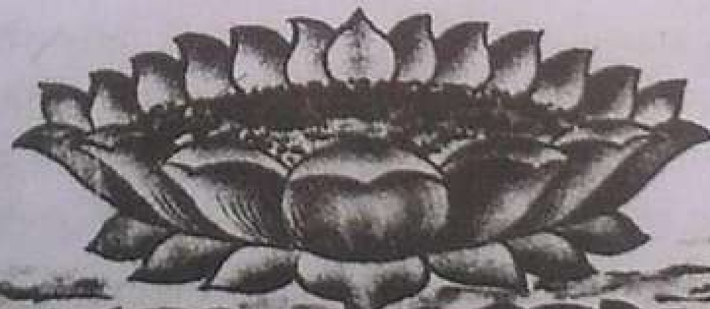
उन साधक–साधिकाओं तथा जितने भी गृहस्थ शिष्य आपसे अनुरक्त हैं, उनको भी कुछ क्षण के लिए ही सही, आप सिद्धाश्रम में अवश्य प्रवेश दें। उनको दिखाएं, कि जीवन का सौन्दर्य, जीवन का आनन्द क्या है? मृत्यु लोक और इस लोक में कितना अधिक अन्तर है? तभी आपकी महानता, आपकी श्रेष्ठता और आपकी अद्वितीयता को वे अनुभव कर सकेंगे।

हम सभी संन्यासी, विशेष कर युवा संन्यासी आपसे प्रार्थना कर रहे हैं, कि आप उन लोगों को भी जीवन की पूर्णता दें, जीवन की अद्वितीयता दें, जीवन की श्रेष्ठता दें।।५३।।



॥५४॥

न वेत्ति ब्रह्मत्वं परिभ्रमति माया परवशः
वयं योगारूढाः परमपि रहस्यं न च गताः।
समाबद्धः मायां कथमुपगमेत् त्वां गृहरतः
त्वदीयं कारुण्यं नयति सफलं जीवन-धनम् ॥



हे गुरुदेव! यह मैंने कई बार अनुभव किया है, कि जिस पर आपका वरदहस्त है, उसको किसी भी साधना और सिद्धि की आवश्यकता नहीं है, ऐसे कई संन्यासी शिष्यों को आपने सिद्धाश्रम में प्रवेश दिया है, जिन्होंने सेवा के अतिरिक्त कुछ जाना ही नहीं। उन्होंने तो आपकी सेवा करने को ही अपना मूल मंत्र मान लिया था, और आपने कृपा कर जिस दृढ़ता के साथ उनको सिद्धाश्रम में प्रवेश दिलाया, वह हम सबके लिए आश्चर्यचकित कर देने वाला था, क्योंकि यह पहली क्रिया थी, क्योंकि ऐसा पहली बार हुआ था, कि आपने दृढ़ता के साथ उनको सिद्धाश्रम में प्रवेश दिलाया, और वे वर्तमान समय में भी सिद्धाश्रम में हैं, और आज वे आपकी कृपा से उच्चकोटि के योगी हैं।

प्रभु! आपको देखकर ये गृहस्थ पहिचान ही नहीं पाते, कि आप उन से प्रसन्न हैं भी या नहीं। आप के चेहरे से यह झलकता ही नहीं, कि आपके हृदय में उनका स्थान है भी या नहीं। कब आप क्या कर देंगे, इस बात का क्षणमात्र भी एहसास नहीं हो पाता, सही रूप में आप माया फैलाने वाले हैं।

प्रभु! ये गृहस्थ साधक आपकी माया के आवरण के नीचे दबे हुए सिसक रहे हैं, मगर यह उनकी न्यूनता है, यह उनका घमण्ड है, कि हमने आपको प्राप्त कर लिया है। अब अपनी माया का परदा हटा दें, क्योंकि यदि वे समय रहते नहीं संभले, तो फिर जीवन में संभलने से फायदा भी क्या होगा? यदि वे समय रहते ही आपको नहीं पहिचान सके, तो फिर जीवन का प्रयोजन ही क्या रह जाएगा?

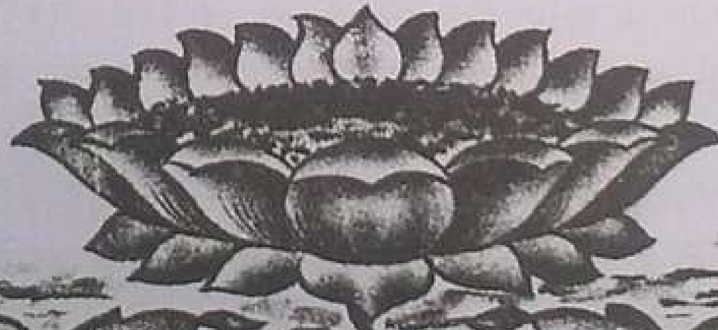
यद्यपि आपने बार–बार यह समझाया है, परन्तु जब हम ही भ्रमित हो जाते हैं, फिर वे तो भ्रमित हो ही सकते हैं, इसमें कोई बड़ी अतिशयोक्ति नहीं है।

हम सब आपके प्रति नतमस्तक हैं, क्योंकि आपने नवीन परम्पराओं को, नवीन कार्यों को, नवीन चिन्तन को जिस प्रकार से स्पष्ट किया है, वह आपके देवत्व की पराकाष्ठा है, मानवीयता की सर्वश्रेष्ठता है, सर्वोच्चता है।। ५४।।



॥५५॥

त्वमेवं कारुण्यं नवनवतरं सत्व-ममलं
परं स्नेहाधीनं परम वशगं शान्त मधुरं ।
त्वमेवं सौन्दर्य-महमपि च धन्यं त्वद गतः
इमं लोकं धन्यं युगमपि च धन्यं त्वधिगमात् ।।



हे दिव्येश्वर! सही अर्थों में देखा जाय तो आप ही करुणा हैं, आप ही दया हैं, आप ही मित्र हैं, आप ही स्नेह हैं, आप ही प्रेम हैं, आप ही जीवन हैं, आप ही हृदय हैं, सब कुछ आप में ही समाया हुआ है, और आप सब में समाए हुए हैं। हमने आपके हृदय में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को गतिशील होते हुए देखा है, एक बार ही नहीं अपितु हजारों बार हमने इस पूरे ब्रह्माण्ड में आपको गतिशील होते हुए देखा है; चाहे वह कोई भी लोक हो, क्योंकि आप हजारों–हजारों रूपों में हजार–हजार स्थानों पर विद्यमान हैं। आप सभी रूपों में अन्यतम हैं, अद्वितीय हैं। यह इस युग का सौभाग्य था, इस पृथ्वी का सौभाग्य था, कि आप पृथ्वी लोक में आए। यह इस समय का सौभाग्य था, कि आप वर्तमान युग में सशरीर आए। यह इस मृत्यु लोक का सौभाग्य था, कि आप गृहस्थ शिष्य और शिष्याओं के बीच में आए। यह इस पीढ़ी का सौभाग्य था, कि इसने अपनी आंखों से आपको देखा है, आपको स्पर्श किया है और आपके चरणों में नतमस्तक हुए हैं।

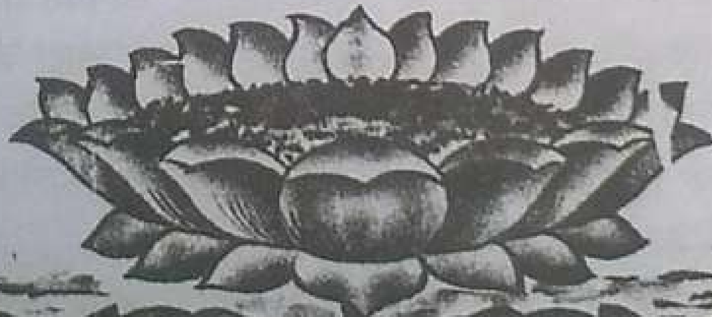
आप इनकी आंखों के सामने से उस दीवार को गिरा दें, जिसकी वजह से वे आपको देख नहीं पा रहे थे, जिसकी वजह से वे सही ढंग से आपकी सेवा नहीं कर पा रहे हैं, जिसकी वजह से वे पूर्णता के साथ समर्पण नहीं कर पाए हैं, आपको अनुभव नहीं कर पाए; और यदि ऐसा ही होता रहा, तो उनका सारा जीवन अपने आप में बेमानी हो जाएगा। यदि जीवन का कहीं आनन्द है, तो वह केवल आपके साथ रहने में है। आपसे एक पल दूर होने की कल्पना मात्र से ही प्राण कांपने लग जाते हैं।

इन सब पर आप करुणा की वृष्टि करें, इन सबको आप अत्यधिक अनुराग, प्रेम और स्नेह दें, इन सबको आप पूर्णता दें, इन सबको आप श्रेष्ठता और अद्वितीयता दें, इन सबको आप ज्ञान चक्षु और दिव्य चक्षु दें, जिससे कि वे आपके विराट स्वरूप को पहिचान सकें, दर्शन कर सकें।।५५।।



॥ ५६ ॥

तपः पूतः देहः परम रमणीयं तव वचः
अबाधं पौरुष्यं तव च विमलं संयतिमनः ।
किमाख्येयं दिव्यं ननु भुजबलं कान्तमखिलं
अहोधन्यं धन्य मिति वदति पूर्ण ऋषिजनः ॥



हे अखिलेश्वर! आप करुणा के सागर हैं, आपका प्रत्येक रोम अपने आप में पवित्र और दिव्य है, आपका स्पर्श जीवन का सौभाग्य है, आपकी सामीप्यता जीवन की श्रेष्ठता है। आपकी वाणी वेदों का उच्चारण है, आपकी आंखें करुणा का अथाह स्रोत हैं, आपकी मुस्कराहट त्रिभुवन मोहिनी है, आपका सारा शरीर कामदेव से भी ज्यादा सुन्दर और आकर्षक है, आपका पौरुष हिमालय से भी ज्यादा अडिग और वेगवान है, आपका ललाट आकाश से भी उन्नत है।

समुद्र निरन्तर आपके चरणों को पखारने में अपना सौभाग्य समझता है, देवता आपके दर्शन कर अपने आप को कृतकृत्य अनुभव करते हैं, अप्सराएं आपके लिए ही श्रृंगार करती हैं, और निर्निमेष दृष्टि से आपको निहारती रहती हैं। साधिकाएं आपकी केवल एक झलक देखने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने को तैयार रहती हैं।

आखिर इन गृहस्थ साधकों के पास आपके दर्शन के अतिरिक्त और क्या है, ये लम्बी साधनाएं कर नहीं सकते, धन के अभाव में वे दीक्षाओं से भी वंचित रह जाते हैं।

उच्चकोटि के योगी आपके चरणों की रज को लेकर अपने ललाट पर चंदन की तरह लगाते हैं। श्रेष्ठ साधक आपको एक क्षण देखने के लिए बेताब बने रहते हैं, फिर हम तो सामान्य गृहस्थ हैं।

प्रभु! कृपा कर हमेशा–हमेशा के लिए हम लोगों के बीच आ जाएं, चाहे इसे हमारा स्वार्थ ही कहा जाए, परन्तु शुभ कार्य के लिए स्वार्थ भी अपने आप में उज्ज्वल है। हम सभी भाव विह्वल, अश्रुपूर्ण नेत्रों से आपको याद करते रहते हैं।

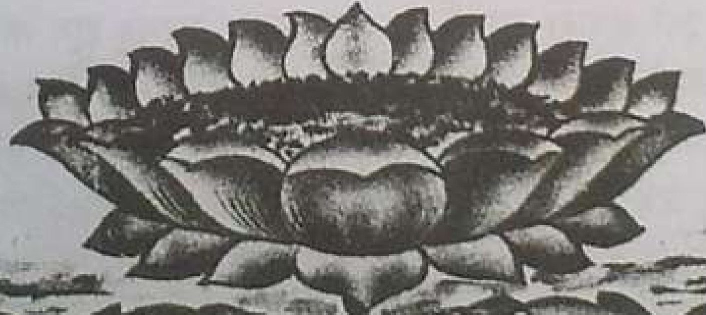
प्रभु अब यह विलम्ब सहन नहीं होता, अब यह दूरी सहन नहीं होती, अलग रहने की कल्पना से ही प्राण कांपने लग जाते हैं।

आखिर कब तक हम आपके विरह को झेलेगें, अब तो इस घड़ी को समाप्त करिए। सभी साधक–साधिकाओं की ओर से प्रणिपात होता हुआ, मर्यादा का पालन करता हुआ, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, कि आप हम लोगों के बीच रह कर, उस पूर्णता और अद्वितीयता को दें, जो जीवन का सौभाग्य है।।५६।।



॥ ५७॥

महोस्त्वं देवस्त्वं परिचरसि कर्मादिषु रतः
अजस्रं निर्बाधं शुचितरमुदार मविकलम् ।
अतस्त्वां संयाचे निखिल विजितात्मा युगधरः
श्रियत्वं श्रेयत्वं प्रविचरति सिद्धाश्रमपदे ॥



हे गुरुदेव! महापुरुष के पृथ्वीतल पर आने की पहिचान ही यही होती है, कि वे योनिज नहीं होते, केवल अवतरित होते हैं। मां को पूरे नौ महीने तक अपने पेट में किसी प्रकार का वजन होने का एहसास ही नहीं होता, यह एहसास तो लगता है, कि जैसे कोई विद्युत प्रवाह उसके अन्दर गतिशील है, मगर किसी भी प्रकार का दर्द, किसी भी प्रकार की तकलीफ उसे नहीं होती है। आपका भी इस पृथ्वी पर जन्म नहीं अपितु अवतरण हुआ, आपने एक दूसरे ग्रह से कुछ समय के लिए इस पृथ्वी पर आकर उन सांस्कृतिक कार्यों को करने का निर्णय लिया, जो आपके लिए उचित था।

इस दृष्टि से मैं ही नहीं अपितु सिद्धाश्रम के समस्त योगी इस बात पर एक मत हैं, कि आप अतीन्द्रिय हैं, आप जितेन्द्रिय हैं, आप इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, और यह हमारा अत्यधिक सौभाग्य है, कि आप हमारी पीढ़ी के बीच आए। यह इस शताब्दी का सौभाग्य है, कि आप हमारे बीच आए। यह इस युग का सौभाग्य है, कि एक अद्वितीय विभूति इस पृथ्वी पर अवतरित हुई।

मैं तो आप में ही राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र इन सबको एकरूप और एक साथ ही देख रहा हूं। सिद्धाश्रम में ये सभी अलग–अलग शरीरों में विद्यमान हैं, और विभिन्न साधनाएं सम्पन्न कर रहे हैं। वे भी यह स्वीकार करते हैं, कि वे आपके समकक्ष नहीं हैं।

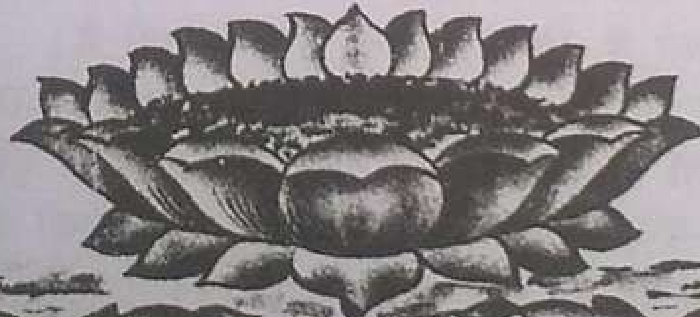
यह आपकी महानता है, कि आप अत्यन्त लघु बनकर विचरण करते रहे। यह आपकी नम्रता है, कि आपने दूसरों को ही श्रेय दिया, दूसरों की ही सराहना की। यह आपकी अनुपमीयता है, कि आप सब पर कृपा–वृष्टि करते रहे।

ब्रह्माण्ड की ध्वनियों से उच्चरित श्लोक मैं पंक्तिबद्ध कर सका, यह मेरे जीवन का सौभाग्य है, यह मेरे जीवन की अप्रतिमयता है। मैं अपने आप को पूर्णरूप से आपके चरणों में समर्पित करता हुआ कृत–कृत्य, अनुभव कर रहा हूं।।५७।।



॥ ५८॥

यदा दैव्य–मात्मा अवतरति कश्चिद् भुवि तदा
युगाधारं सर्वं भव विभव संघं सुचरितं ।
समस्तं वै पूर्णमिति गतमिदं ज्ञान–मनघम्
त्वया सत्यं सत्यं पुनरपि पुनः पावन कृतम् ॥



हे प्रभु! जब–जब भी कोई महापुरुष पृथ्वी लोक में जन्म लेता है, तो उस युग के व्यक्ति उसे पहिचान नहीं पाते, क्योंकि उनके हाथ में मात्र एक ही काम होता है, और वे पृथ्वी पर उतने ही समय तक रहते हैं, जितने सनय तक पृथ्वी पर वह कार्य सम्पन्न नहीं हो जाता।

आपने भी ज्योतिष, दर्शन, धर्म, योग, मीमांसा, जो भौतिकता की चकाचौंध में समाप्त होते जा रहे थे, जब चारों ओर घना अंधकार छाता जा रहा था, ऐसे समय में अवतरित होकर, उन युगीन सत्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया, प्रयत्न किया, जो आध्यात्मिक जीवन के आधारभूत स्तम्भ हैं; और इस कार्य के लिए जितना घोर श्रम, जितना घोर कष्ट, जितना दुःख, जितनी वेदना और जितनी आलोचना आपने संहन की, उतना एक मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है।

इन धधकते हुए अंगारों के बीच भी आपने शांति का सन्देश सुनाया है। इन जलती हुई ज्वालाओं के बीच भी आपने अध्यात्म का सन्देश दिया। इन आलोचकों के बीच भी आपने जो कुछ ज्ञान का प्रवाह उत्पन्न किया, वह इस युग के लिए आश्चर्यजनक है, सौभाग्यदायक है।

यह इस पृथ्वी का सौभाग्य है, कि एक बार फिर आपने अवतरित होकर, उस अंधकार को दूर कर परे धकेलने में सफलता अर्जित की।

मैं जानता था, कि समय बहुत कम है। मैं यह भी जानता था, कि यह पृथ्वी एक अद्वितीय व्यक्तित्व से न्यून हो जाएगी, मगर कम समय में भी में जो कुछ विराटता थी, जो कुछ अद्वितीयता थी, वह गृहस्थ शिष्यों को प्रदान की। ये सभी अपने जीवन में आपके उस अद्वितीय विराट स्वरूप को, उस द्वापर युग को देख सकें, अनुभव कर सकें, चित्त का उत्थान कर सकें, जीवन की पूर्णता प्राप्त कर सकें, श्रेष्ठता प्राप्त कर सकें आपको पहिचान सकें, आपके ज्ञान को समझ सकें, उनकी तरफ से मैं आपसे ऐसी ही कृपा प्राप्ति की आकांक्षा रखता हूं।।५८।।



॥ ५९ ॥

अहो मन्ये दिव्यं त्वयि परिगता षोड्शकलाः
त्वमेकाकी पीतं सकल गरलं शाम्भवमिव ।
अनिर्वेदं तापमपि च सहते शान्त–मतुलः
त्वया धन्यं पुण्य–मधिगतमिदं भारतभुवम् ॥



हे दिव्येश्वर प्रभु! निश्चय ही कृष्ण सोलह कला पूर्ण थे और उन्होंने अपने जीवन में उन कार्यों को सम्पन्न किया, जो अपने आप में आश्चर्यजनक माने गये। उन्होंने प्रेम किया, उन्होंने रासलीला की, युग के विपरीत जाकर गोपियों से प्यार किया, युग के खिलाफ खड़े होकर इन्द्र से लड़े समाज से विद्रोह कर दुष्टों का दमन किया, जो अंधकार फैलाने वाले थे, उनको समाप्त किया, और अपने बलबूते पर द्वारिका नगरी को बसाया, जो अपने आप में ही 'देवभूमि' कहलाने योग्य हो गई।

आप भी ऐसे ही रूप में इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, क्योंकि आप भी सोलह कलाओं से परिपूर्ण हैं, आप में प्रेम है, दया है, करुणा है, सत्यता है, सत्य पर स्थिर रहने की क्षमता है, परेशानियों से जूझने की प्रबल शक्ति है, आलोचनाओं को झेलने की क्षमता है और आपने जो भी दृढ़ निश्चय कर लिया, उसे पूरा कर लेने की क्षमता है फिर वह इस युग के विपरित ही क्यों न हो।

वास्तव में ही आपने जीवन में समाज के खिलाफ खड़े होकर धधकते हुए अंगारों के बीच जो कुछ कार्य किया, वह हम सब आपके इस साहसपूर्ण कार्यों को देखकर कांप जाते हैं।

हम नहीं समझते, कि क्या यह एक व्यक्ति के लिए सम्भव है, परन्तु आपके लिए तो यह कुछ भी असम्भव नहीं है, क्योंकि जब–जब भी घना अंधकार छाएगा, तब–तब आपको अवतरित होना ही पड़ेगा. . . और आप अवतरित हुए, ये हमारे लिए अत्यन्त सौभाग्य प्रदायक घड़ियां हैं।

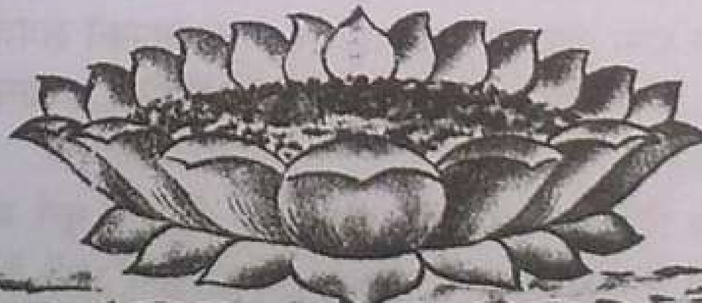
आप विभिन्न रूपों में हैं, सही अर्थों में आप पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं, सही अर्थों में आप कृष्ण हैं, शंकराचार्य हैं, सही अर्थों में आप शिव हैं, ब्रह्मा और विष्णु हैं, जगद्गुरु हैं।

मैं आपको सभी स्वरूपों के समक्ष नतमस्तक होता हुआ प्रणाम करता हूं, कि आप हमें जीवन का सौभाग्य, जीवन का आनन्द, जीवन का ऐश्वर्य, जीवन की पूर्णता दें।।७१।।



॥ ६०॥

तवैतत् सत्कार्यं जगति महनीयं नवमिति
सचैतन्यं सौख्यं परमपवनं प्रेमधिगतं ।
सदात्मा सम्बन्धः भवति मधुरः स्वत्व निरतः
न श्रेयः प्रेयश्च न च श्रियकरः दैहिक गतः ॥



हे सकलेश्वर! यदि सही रूप में कहा जाए, तो प्रेम की वास्तविक सत्यता आपसे ही हमने सीखी है। अब तक तो 'प्रेम', वासना में लिप्त प्रेम कहलाता था, जो ऊपरी तलछट था। शरीर से शरीर के आकर्षण को प्रेम कहा जाने लगा था, परन्तु आपने प्रेम को, प्राणों से प्राणों को जोड़ने की क्रिया द्वारा समझाया, आपने आत्मा से आत्मा को जोड़कर प्रेम का सन्देश दिया, आपने अन्दर की सुप्त वृत्तियों को जगाकर यह एहसास दिलाया, कि मनुष्य बने रहने के लिए प्रेम अत्यन्त आवश्यक है.।

इस प्रकार के विषैले वातावरण में आपने लीक से अलग हटकर जो कुछ कहा, उसकी जितनी आलोचना हुई, उन आलोचनाओं के घूंट को आपने चुप रहकर नीलकठ की तरह पिया, जो प्रहार आप पर हुए उनको आपने सहा, जितने आप पर अत्याचार हुए उनको आपने मुस्कराते हुए झेला।

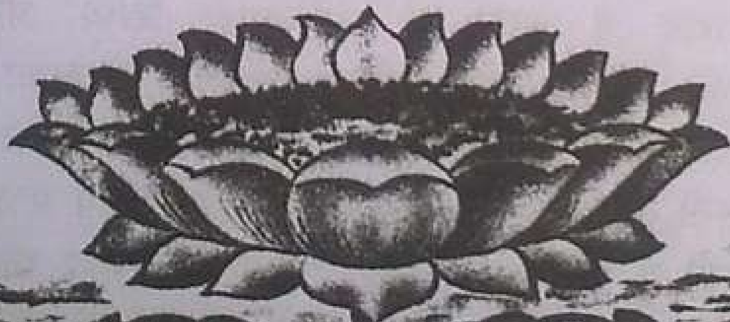
यह सब सहन करने के बावजूद भी आपने यह एहसास दिलाया, कि जीवन में सब कुछ सत्य होते हुए भी प्रेम चिरन्तन सत्य है, जो प्राणों से किया जाता है, जो अन्तरात्मा से किया जाता है, और आपने अपने कार्यों से, अपने व्यवहार से, अपने विचारों से प्रेम को इतनी ऊंचाई पर उठाया, जहां प्रेम अपने आप पुनः शुद्ध, निर्मल, चैतन्य और देदीप्यमान हो सका है।

वास्तव में हममें से अधिकांश शिष्य और साधक सौभाग्यशाली हैं, कि उन्हें आपका साहचर्य, आपका प्रेम मिल पाया। वास्तव में ही आपने प्रेम का जो वास्तविक स्वरूप दिया है, प्रेम को इतनी ऊंचाई पर उठाया है, वह अपने आप में अन्यतम है। वास्तव में ही वे गृहस्थ धन्य हुए, जिन्होंने आपका साहचर्य प्राप्त किया, जिन्होंने आपका प्रेम प्राप्त किया, जिन्होने आपकी सामीप्यता प्राप्त की। उनके समान सौभाग्यशाली कोई भी नहीं हो सकते, ऐसा लगता है, कि जैसे विधाता ने उनके भाग्य को हीरे की कलम से लिखा हो।।६०।।



॥ ६१ ॥

निरौपम्यं सत्वं परिभव-पदात् सोपम-जगत्
न सोमः सूर्याग्नौ क्वचिदपि स्थितिं यान्ति निखिल ।
सलज्जो हिमशैलः परिणत इव मान-मधुरः
रसाधारः सारः सतत चरणौ क्षालन परः ॥



हे गुरुदेव! मैं आपको किन शब्दों से सम्बोधित करूं, सोलह कला पूर्ण ब्रंह्म के रूप में, परम गुरुदेव के रूप में, प्रभु के रूप में, ईश्वर के रूप में, जो भी शब्द आपके लिए उद्धृत करता हूं, वे सभी शब्द छोटे पड़ जाते हैं, क्योंकि आप इन सबसे भी परे और ऊंचे हैं। आपके सामने हिमालय भी अत्यन्त नगण्य है, सागर भी एक छोटी सी तलैया है, सम्पूर्ण आकाश आपके सामने बौना सा बना खड़ा रह गया है।

यह इस पीढ़ी का दुर्भाग्य था, कि ये आपको पहिचान नहीं सकी। यह इस देश का दुर्भाग्य रहा, कि यह एक अद्वितीय विभूति के सान्निध्य का एहसास नहीं कर पाया, मगर इसमें न्यूनता तो इस पृथ्वी की ही है, न्यूनता तो इस वातावरण की ही है, न्यूनता तो इस पीढ़ी की ही है।

आप तो एक निश्चित समय पर इस ग्रह से दूसरे ग्रह की ओर चले गए, मगर बाद में इन लोगों के पास सिर धुनने, पछताने और परेशान होने के अलावा कुछ नहीं बचा है।

मैं कुछ नहीं कह सकता, कि ये लोग किस प्रकार से अपने आप को समझा सकेंगे?

किस प्रकार से अपने आप को क्षमा कर सकेंगे, कि हमने एक देव पुरुष को अपने हाथों से खो दिया, हमने एक अद्वितीय पुरुष को धधकती आग में जला दिया, हम एक अद्वितीय विभूति के सत्संग के लाभ से वंचित रह गये।

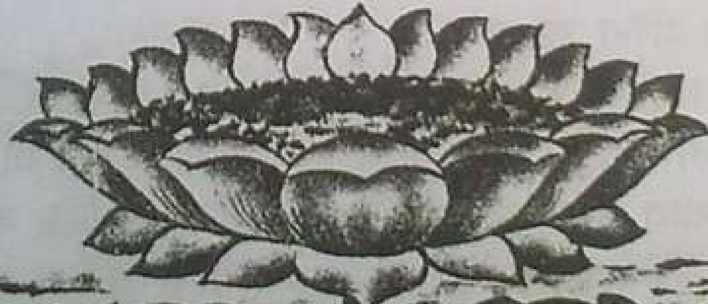
हे प्रभु! वे समझे, कि वे आपके हैं। वे समझे, कि उन्होंने आपको आत्मसात कर लिया, मगर यह उनकी न्यूनता थी, यह केवल उनका एहसास मात्र था, यह उनका गर्व था, क्योंकि आपके चेहरे से, आपकी क्रियाओं से, आपकी भावनाओं से उनको यह एहसास ही नहीं हुआ, कि आपने उनको कितना अधिक अपनाया था या नहीं अपनाया था।

आप तो अपने कार्य में संलग्न रहे, अपने चिन्तन में रत रहे, इसलिए कोई भी शब्द आपके लिए अत्यन्त न्यून है।।६१।।



॥६२॥

वयं माया बद्धा गृहपरिगता अश्रु सहिताः
सकारुण्योपेता प्रतिपद तवाराधन परा ।
सदा प्राणाधीना प्रतिदिवस माराध्य गणितं
इदानीं त्वं देव! प्रति व्रजतु तद् मानव भुवम् ॥



हे गुरुदेव! आप सिद्धाश्रम के प्राणस्वरूप हैं, आपके ही कारण यह सिद्धाश्रम प्राणवान् एवं चेतनामय है। जब पहली बार सिद्धाश्रम गए थे, तब सिद्धाश्रम एक श्मशान की तरह था, आप एक वसन्त की तरह आये और आपने अपनी हिम्मत और बलबूते पर, जोश और क्षमता के बल पर सारी व्यवस्था को बदला, जो पिछले कई हजार वर्षों से नहीं बदली थी।

प्रभु! आपने वहां पर नवीन परम्पराएं डाली हैं– सिद्धाश्रम दिवस के रूप में, गुरु पर्व के रूप में, गुरु महोत्सव के रूप में, अन्तरिक्ष दिवस के रूप में और ब्रह्माण्ड–परिपार्श्व के रूप में। जंब आप वहां होते हैं, तब इन सब उत्सवों में एक लावण्यता आती है, एक चैतन्यता होती है, ऐसा लगता है, कि जर्रा–जर्रा इस उत्सव को मना रहा है, परन्तु आपके जाने के बाद भी वे उत्सव के क्षण तो आते हैं, किन्तु निष्क्रिय और निष्प्राण की तरह सिर्फ संचालन सा होता है।

जब आप पृथ्वी लोक में आए, तो ऐसा लगा, कि जैसे वास्तव में ही सब कुछ प्राप्त हो गया, मगर आपके जाते ही वह आनन्द कुछ क्षणों में ही विलीन हो गया। सर्वथा निराशा, वेदना और पश्चाताप हीं शेष है। आनन्द, उमंग और मस्ती एकदम विलीन हो गई है। ऐसा लगता है, जैसे जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है।

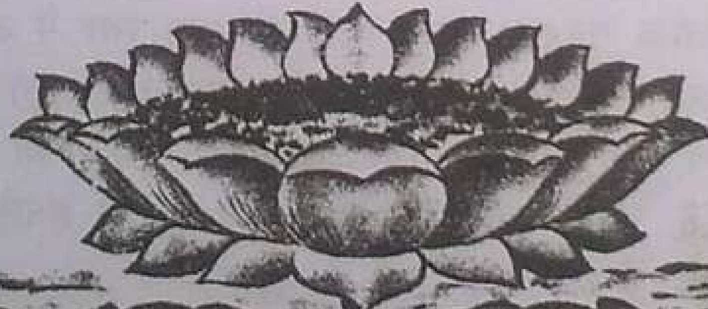
प्रत्येक गृहस्थ साधक साधिका एक स्वर में अश्रुपूर्ण नेत्रों से यह प्रार्थना करते हैं, कि आप पृथ्वीलोक में पुनः आयें, यहां विचरण करें और हमें उस आनन्द से वंचित न करें, जो हमारे जीवन की निधि है, जो हमारे जीवन का पुण्य है, जो हमारे जीवन की वास्तविकता है।

मैं सबकी तरफ से आपकी फिर एक बार अभ्यर्थना करता हुआ निवेदन करता हूं, कि आप इस पावन धरती पर पुनः आकर हम सबको नवीन जीवन, नवीन प्राण, नवीन ऊर्जा, नवीन उमंग, नवीन चेतना और नवीन तेजस्विता प्रदान करें।।६२।।



॥ ६३ ॥

सचैतन्यं नित्यं परम सुखदम् भारत भुवं
तपः पुंजैः पूतं चरण–रजसा ते परिनुतम् ।
इदानीं संतप्तास्तव विरह दुखेन भरितं
इदं श्रावं श्रावं प्रतिव्रजतु देव निखिल त्वम् ॥



हे प्रभु! आपने ही यह एहसास करवाया था, कि जीवन मात्र ऊब, खीझ, निराशा और साधना के बलबूते पर नहीं चलता। आप जब यहां सशरीर थे, तो हमारा समस्त जीवन हंसी, खिलखिलाहट, माधुर्य, ओज और आनन्द से भरपूर था, यहां का कण–कण संगीत से आप्लावित था, यहां की हवा सुगन्धित और मधुर थी, और यहां का पत्ता–पत्ता आपके ही गुणों के महानिनाद से गुंजरित था।

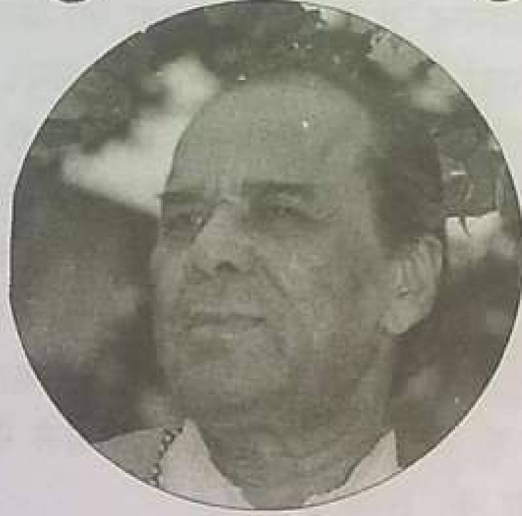
आपने सही अर्थों में इस भारत भूमि को पावनतम बना दिया है, और इसके लिए हम भारत देशवासी आपके ऋणी हैं।

पूज्य गुरुदेव भले ही मैं आपसे कई हजार वर्ष पहले साधना आरम्भ कर चुका हूं, भले ही मैं आयु में आपसे बड़ा हूं, परन्तु जब मैं स्वयं को देखता हूं, तो ऐसा लगता है, कि जैसे मैं आपके सामने बिलकुल एक शिशु की तरह हूं।

आप केवल सोलह कला पूर्ण व्यक्तित्व ही नहीं वरन् सम्पूर्ण साधना के साक्षात् स्वरूप हैं, साधनाएं और सिद्धियां आपके सामने हाथ बांधे खड़ी रहती हैं।

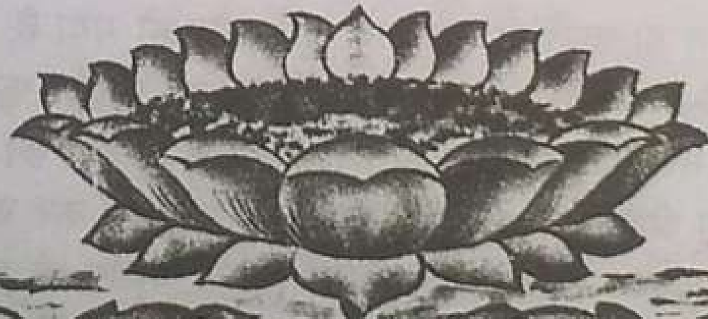
आपके पृथ्वीलोक से जाने के बाद यहां पर अब वह प्राणों की चैतन्यता नहीं है, अब वह आनन्द की ऊर्जा नहीं है। गतिशीलता तो है, कार्य तो उसी प्रकार से हो रहे हैं, परन्तु जो चैतन्यता होनी चाहिए, जो आपके बीच रहकर हम पुलकित होते थे, जिस माधुर्य से ओत–प्रोत हो जाते थे, वह सब कुछ लोप हो गया है, और आज यहां के पत्ते–पत्ते विरह व्याकुल हैं, यहां का प्रत्येक फूल आंसुओं से लबालब भरा हुआ है, यहां की धरती उदास है, यहां का जर्रा–जर्रा आपके बिना अकेलेपन और खालीपन का एहसास कर रहा है। हम समस्त साधकगण आपके बिना उदास और बेजान से हो गए हैं।

प्रभु! हम ऐसे ही यहां गतिशील हैं, जैसे मृत प्राणी किसी यंत्र की तरह गतिशील हो। हम सब आपके बिना सुख की, आनन्द की तो कल्पना ही नहीं कर सकते। यदि आप हैं, तो सब कुछ है, यदि आप नहीं हैं, तो सब कुछ होते हुए भी महाश्मशान है।। ६३।।



॥ ६४॥

अहो प्रेयः देहो–मुदभरित मांगल्यं मनः
त्वदीयं तन्नाम परम पवनं चास्य श्रवणात् ।
स वै धन्यं धन्यमिति च तव दृष्टिं परिगमात्
सदा सत्यं सत्यं परम–सुखदं दर्शन सुखम् ॥



हे गुरुदेव! आपकी उपस्थिति के बिना साधक, शिष्य या साधिकाएं सभी अस्तित्वहीन और महत्वहीन हैं, चाहे उनके पास संसार की समस्त सुख–सुविधाएं हों, ऐश्वर्य, मान और प्रतिष्ठा हों, पर आप नहीं हैं, तो वे सब कुछ रसहीन और सारहीन ही हैं। आप हों, तो उनमें स्वतः चैतन्यता और दिव्यता का अहसास होने लगता है। आप का होना ही जीवन की सार्थकता है। शिष्य की एक ही यही कामना रहती है, कि उसके आराध्य, प्राणाधार पूज्यपाद गुरुदेव निखिल सदैव उसके हृदय में स्थापित रहें और आंखों में उनकी सतत उपस्थिति की भावना प्रतिस्फुरित रहे। इससे अधिक सौभाग्य शिष्य के लिए और क्या हो सकता है।

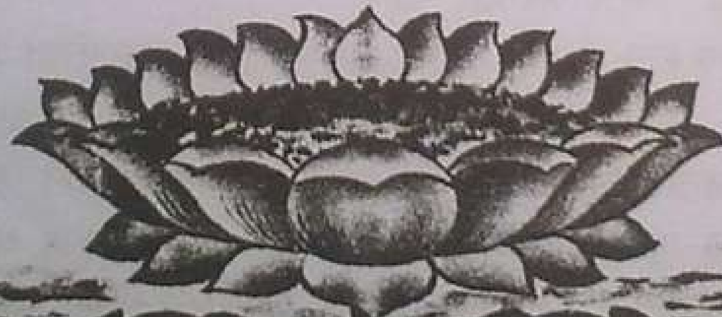
कितना आश्चर्य है जब आप यहां नहीं होते, उस क्षण एक अभाव का निरन्तर प्रतिबोध होता रहता है। आपका नाम सुनते ही शरीर में एक अजीब सी हलचल, एक तूफान सा पैदा हो जाता था। जिस मार्ग से आप आने वाले होते थे, मार्ग के दोनों ओर साधक खड़े हो जाते थे, एकटक उन्हें निहारते रहते थे, भले ही आप उन्हें न देखें पर जिनको देखकर वे मुस्करा देते, उसके भाग्य से सभी ईर्ष्या करते ही थे और वह अपने आप में गदगद और रोमांचित हो जाता था, और अपने को धन्य अनुभव करने लगता था।

इतना होने के बाद भी हम सब रोमांचित, उल्लसित और प्रसन्न हो जाते थे, हमारा सारा शरीर एक अपूर्व आभा से सम्पूरित हो जाता था, हमारे शरीर से प्रक्र सुगन्ध प्रवाहित होने लग जाती थी। यह सब कुछ आपकी कृपा दृष्टि का ही प्रतिफल था। आपके इस तरह अचानक सिद्धाश्रम गमन करने से सभी साधक और शिष्य हतप्रभ हैं, उनको कभी भी ऐसी आशंका नहीं थी, कि पूज्य गुरुदेव हमें छोड़कर चले जाएगे। आपके सिवाय हमारे जीवन में और क्या शेष रह गया है। अतः हमारे करबद्ध कातर पुकार को सुनें और शीघ्र हमारे बीच वापस आ जाएं।। ६४।।



॥६५॥

न प्राप्तव्यं मंत्रं न हि च गमनं तांत्रिक विधौ
न काचित् वांछास्ति विविधविध सिद्धिं प्रगमनं ।
न लक्ष्यं भिन्नं च तव चरणसेवां परिनुतं
अतस्त्वां संयाचे तव चरण संगं सुखकरम् ॥

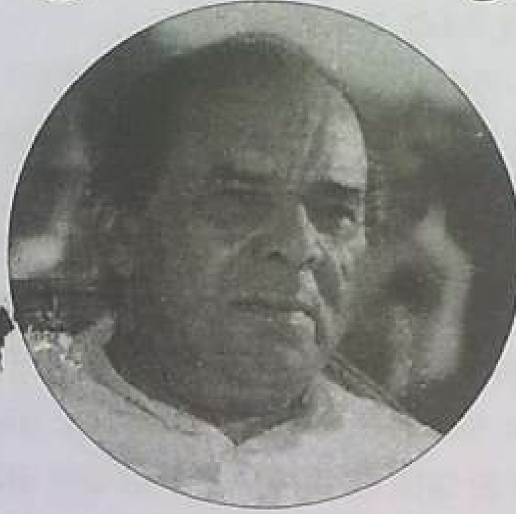


हे महामानव! आप साक्षात् ब्रह्म हैं, ईश्वर हैं या कृष्ण हैं, जो भी हैं, सदैव नमनीय हैं, सेवनीय हैं। ऋषि, मुनि, साधकों और शिष्यों के आराध्य हैं। जब भी कोई आप को जानने का प्रयास करते हैं, आप माया का परदा डाल देते हैं।

प्रभु! हम गृहस्थ हैं, हमारे ज्ञान चक्षु जाग्रत नहीं हैं, आप को समझ पाना हमारे वश की बात नहीं है, फिर भी आपके नेत्रों में अथाह करुणा का बोध होता है, आप के चेहरे की रश्मियों से अपने आप में एक नवीन वातावरण की सृष्टि होती है। आपकी उपस्थिति से ही चारों तरफ वसन्त खिलने लग जाता है, आप अपने आप में ही वायु हैं, मरुदगण हैं, आकाश हैं, पृथ्वी हैं और सही अर्थों में चराचर जगत हैं।

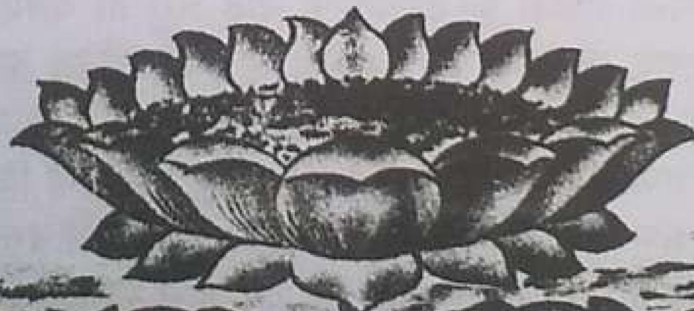
आप हम पर ऐसा भ्रम का परदा मत डालें, हम कुछ क्षणों के लिए विचलित हो जाते हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण जब हमारी अन्तरात्मा एकदम से हमें झकझोर कर खड़ा कर देती है, तभी आपके उस वास्तविक स्वरूप को देखकर मन में एक पूर्ण विश्वास जाग्रत होता है, कि हम सब शिष्य सौभाग्यशाली हैं, जो आपके पास रहे, आपकी सेवा में रहे, और आप जिस प्रकार से प्रत्येक क्षण को आनन्दित और उल्लसित करते थे, वह अपने आप में अद्वितीय है।

अब हमारे जीवन का प्रयोजन साधना नहीं है, मंत्र जप नहीं है, सिद्ध होना नहीं है, योगी होना नहीं है, यह मेरी ही प्रार्थना नहीं है, हम समस्त शिष्यों की प्रार्थना है, यह मेरी ही वाणी नहीं है, यह समस्त शिष्यों की वाणी है, यह मेरी ही नहीं अपितु समस्त साधकों की आर्त पुकार है। सिर्फ मेरी ही आंखें सजल नहीं हैं, समस्त शिष्यों की आंखें सजल हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूं, यह सभी शिष्यों के हृदय का कण–कण बोल रहा है, मैं तो केवल एक निमित्त बना हूं, अब आप हम पर अपनी माया का आवरण और न डालें जिससे कि हम आपके इस दिव्य स्वरूप का अहसास हर क्षण कर सकें। हम गृहस्थ हैं, अज्ञ हैं, कर्तव्यों के बोझ से दबे हुए हैं, प्रमाद और आलस्य से आबद्ध हैं, फिर भी आप हमारी डोर को सम्हाले हुए हैं। हर पल आप हमारे हृदय में ही वास करें ।६५।।



॥ ६६ ॥

नमो सिद्धायोगा सतत चरणौ क्षालन क्षमम्
असौ कल्पो धन्यः कुसुम कुसुमैः मोदन परः ।
परम धन्यः संघः चरणरज पूतः सुमुदितः
तमेवं संप्रीतं परि निहित हस्तं वदसि यम् ।।



हे पुण्यभद्र!, जब आप सिद्धयोगा झील के पास खड़े होते हैं, तो सिद्धयोगा की लहरें अपने आप उछल कर आपके चरणों को चूमने के लिए व्याकुल हो उठती हैं। जब आप किसी कल्पवृक्ष के तले खड़े होते हैं, तो कल्पवृक्ष अपने समस्त फूलों को आप पर बरसा कर अपने आप में मुग्ध हो जाता है।

जब आप कहीं से निकलते हैं, तो समस्त साधिकाएं और शिष्याएं आपकी चरण धूल से अपने आप को पवित्र करने लग जाती हैं। जब आप किसी साधक के कंधे पर हाथ रखकर दो क्षण बात कर लेते हैं, तो कई–कई दिनों तक वह अपने आप में उमंगित और उल्लसित बना रहता है।

जब आप किसी के नेत्रों के सामने खड़े हो जाते हैं, तब उसका सारा शरीर पुलकित और रोमांचित होने लगता है, तब उसे ऐसा लगने लगता है, कि उसने नया जन्म पा लिया हो।

वास्तव में आपकी उपस्थिति से ही यह सब कुछ गतिमान है, आपकी उपस्थिति से ही हमारा जीवन है, आपकी उपस्थिति से ही ये प्राण हैं, और वास्तव में ही जब आप हैं, तो यह जीवन है।

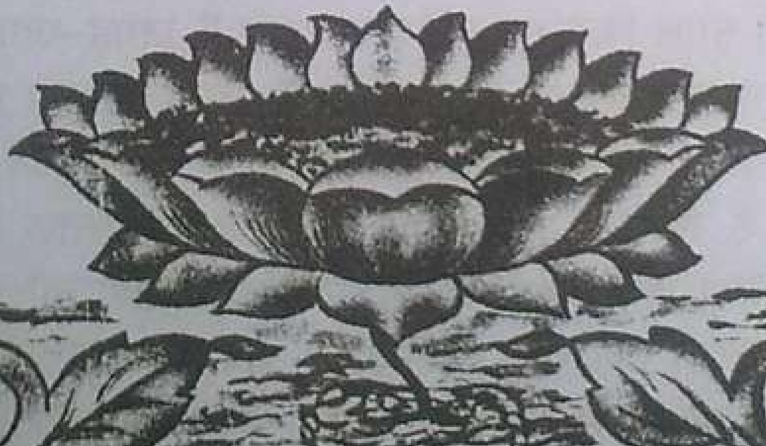
आपकी कृपा से ही सिद्धाश्रम का प्रत्येक कण–कण और माटी चन्दन की तरह है, जिसमें से सुगन्ध प्रवाहित होती है यहां न सूर्य की गर्मी है और न चन्द्रमा की शीतलता, सदा एकरसता है सभी ऋतुएं अपने आप में पूर्ण श्रृंगार किये हुए गतिशील रहती हैं, जगह–जगह ऋषि–मुनि साधनाएं सम्पन्न करते हुए दिखाई देते हैं, उनको देखना भी अपने आप में एक पुण्य है। हम गृहस्थ हैं, हम में राग है, द्वेष है, वेदना है, शुचिता का अभाव है, फिर भी आपके प्रति कृतज्ञ हैं, नतमस्तक हैं, चाहे हमारे पास साधनाओं की ऊंचाई नहीं है,, चाहे हमने ब्रह्म को नहीं पहिचाना हो, मगर आपकी उपस्थिति से ही अपने आप में ब्रह्मत्व जाग्रत हो उठता है, आपके स्पर्श से ही हम अपनी सुध–बुध भुला बैठते हैं।

हे प्रभु, हे गुरुदेव, हे ईश्वर, हम अत्यन्त भाव विह्वल शब्दों में आपको स्मरण करते हैं। आप अपनी उपस्थिति से इस भू–लोक को पुनः पावन बना दें ।।६६।।



॥६७॥

यदा सिद्धात्मा स अवतरति कश्चित् मनुभवः
तदानेका देवाः परिधृत शरीरं च परितः ।
तमर्च्यन्ते नित्यं विविधविध सेवासु ललिताः
इयं धन्या भूमिः परिचरण मात्रेण पवना ॥



हे प्रभु! यह बात तो स्पष्ट है, कि जब ईश्वर या कोई महापुरुष पृथ्वी पर जन्म लेता है, तो उसके साथ ही अन्य देवी–देवता भी जन्म ले लेते हैं, क्योंकि देवी–देवता भी उनके साथ ही साथ विचरण करना अपना सौभाग्य समझते हैं और वे मनुष्य रूप में उनके आस–पास विचरण करते रहते हैं। जब आपने कृष्ण रूप में जन्म लिया, तब भी सभी देवी–देवता ग्वालों के रूप में और गोपियों के रूप में जन्म लेकर आपके साथ ही विचरण करते रहे और उन्होंने अपने जीवन को धन्य और सौभाग्यशाली माना।

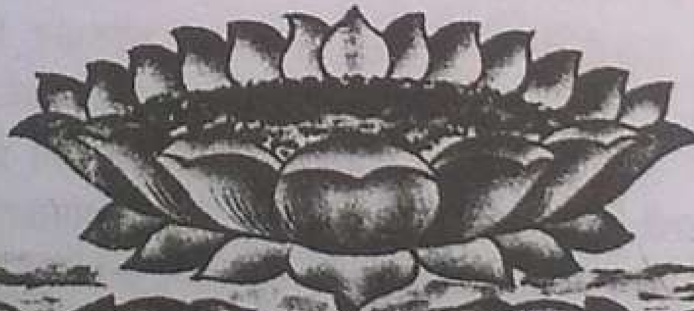
जब आप पृथ्वी पर अवतरित हुए, तो वही देवता शिष्यों के रूप में और अन्य रूपों में आपके आस–पास ही आपसे संस्पर्शित और सम्पर्कित रहे। मगर दुर्भाग्य इस बात का है, कि वे अपने आप को पहिचान नहीं पाए, और जब पहिचान नहीं पाए, तो वे जीवन का आनन्द भी नहीं ले पाए। जब उनको यह एहसास होगा, कि उनका जन्म एक सामान्य मानव या सामान्य नारी के रूप में नहीं हुआ, अपितु वे एक देवता ही नर या नारी रूप धारण कर आपके आस–पास थे, तब वे अपने जीवन के महत्व को समझ सकेंगे, तब वे ज्यादा से ज्यादा आपको स्मरण कर सकेंगे, तब वे ज्यादा से ज्यादा आपका सानिध्य प्राप्त करने के लिए व्यग्र रहेंगे।

प्रभु! हमें ऐसा सौभाग्य प्रदान करते रहिए, कि जब, जहां कहीं भी आप अवतरित हों, हम इस काया को छोड़कर, किसी न किसी रूप में जन्म लेकर आपकी लीलाओं को देख सकें, आपके साथ रह सकें, आपका साहचर्य प्राप्त कर सकें, आपका प्रेम प्राप्त कर सकें, आपसे मिलकर आनन्द प्राप्त कर सकें। आपका साहचर्य ही जीवन का सौभाग्य है, इस सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए हम साधना नहीं कर सकते। योग, ध्यान और मंत्र जप हम नहीं जानते, तंत्र साधना में हमारी रुचि नहीं है। आप पुनः हमारे बीच आकर अपने मधुर मुस्कान से हमें आप्लावित करें, यही अंतिम और अंतिम प्रार्थना है।।**६७**।।



॥ ६८॥

तवाधीना चेताः प्रबलतम माया परवशाः
न वै ते विदन्ति परम परमानन्द निखिलम् ।
कृपापेतो नाथः परिचरतु किंचिद् महदिदम्
कृतज्ञं ते सन्तु जनिमरण बन्ध विगलिताः ॥



हे परमाराध्य! हमने जीवन में ऐसा क्या अपराध किया है, कि आप हमसे दूर हैं? हमसे क्या गलती हो गई है, कि आप हमसे विरत हैं? ऐसी क्या न्यूनता हो गई है, कि आप हमें जी भर कर देख लेने का भी अवसर प्रदान नहीं किया?

जिनको यह सौभाग्य मिला था, वे अपने सौभाग्य को समझ नहीं पाए, जिन्हें समझना चाहिए वे उस सौभाग्य से वंचित हो गए, यह कैसी विडम्बना है, यह कैसा आश्चर्य है?

प्रभु! आप हम से माया का परदा हटा दीजिए, जिससे कि हम वास्तविक स्वरूप में अपने आप को देख सकें, अपने आप को पहिचान सकें, और जब हमें यह एहसास होगा, तभी हम आपको भी सही रूप में पहिचान सकेंगे, तभी और अधिक निकटता आ सकेगी, तभी और अधिक नजदीकी आ सकेगी और तभी हम अपने आप को ज्यादा धन्यभागी अनुभव कर सकेंगे।

मेरा तो आपसे निवेदन है, कि आप हम समस्त शिष्यों की आंखों पर से परदा हटाकर दिव्य–दृष्टि प्रदान करें, अपनी तपस्या के माध्यम से, अपने कृपा–कटाक्ष के माध्यम से, जिससे कि हम अपने जीवन का सर्वोच्च सुख और ब्रह्मत्व प्राप्त कर सकें, अपने जीवन का आनन्द अनुभव कर सकें, पूर्णता प्राप्त कर सकें, और जिस हेतु हमने मानव जीवन धारण किया है, उस मानव जीवन को सार्थक कर सकें।

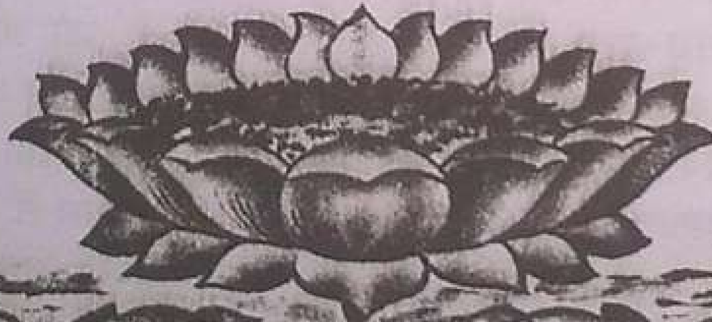
वास्तव में ही हम गृहस्थ साधकों का जीवन धन्य हो गया, जो आपके आस–पास थे, जो आपके सम्पर्क में थे, जो आपसे भेंट करते थे, जो आपसे प्यार पाते थे, जो आपसे आनन्द प्राप्त करते थे।

गुरुदेव! आपसे प्रार्थना है, कि आप उन साधिकाओं को, उन साधकों को क्षमता प्रदान करें, जिससे कि वे सिद्धाश्रम में प्रवेश पा सकें और जब चाहें वापिस गृहस्थ में जा सकें। उनको यहां आने–जाने में किसी प्रकार की कोई रोक–टोक नहीं हो, वे दोनों ही स्थितियों का आनन्द ले सकें। यह केवल आपकी कृपा से ही संभव हो सकेगा, जब तक ये अपने सौभाग्य को नहीं समझ सकेंगे, तब तक ये कुछ कर भी नहीं पाएंगे।।६८।।



॥ ६९॥

न कांक्षे दिव्यत्वं न हि विविध भोगावलि वृतम्
पदं प्राप्तं श्रेयं सकल सुखदं मान मधुरं ।
महद् ज्ञानं लब्धं श्रुति समुदितं यत् ततः किम्
त्वया भिन्नं सर्वं निखिल परकीयं न शुभदम् ॥



हे प्रभु! हम इन साधनाओं को करके भी क्या प्राप्त कर लेंगे हम ब्रह्मत्व को प्राप्त करके भी क्या प्राप्त कर लेंगे? यदि हम सही अर्थों में ब्रह्म बन भी जायेंगे, तब भी क्या हो जायेगा? हमारा जीवन एक खोखला जीवन बनकर ही रह गया है। मैं अनुभव करता हूं, किं हम सभी शिष्य हैं, अनेक साधनाएं की हैं, जीवन की सभी आवश्यकताएं इनसे पूरी हो सकती हैं, मगर इसके बावजूद भी निष्प्राण हैं, निश्चेतना युक्त हैं, क्योंकि जब आप नहीं हैं, तो यह साधना और सिद्धि सब कुछ व्यर्थ है, यह सब हमारे लिए बेमानी और तुच्छ है, हमें यह सब कुछ नहीं चाहिए।

अब हम अनुभव करने लगे हैं, जीवन ब्रह्मत्व पद प्राप्त करना नहीं है, जीवन तो आपके साथ विचरण करना है। जीवन उच्चकोटि का योगी बनना नहीं है, जीवन तो आपकी सेवा करना है। जीवन उस पूर्णता को प्राप्त करना नहीं है, जीवन आपका साहचर्य है, और हम इस साहचर्य से वंचित हैं। जब साधना करते हैं, तो बीच में ही साधनाएं टूटने लग जाती हैं, मंत्र जप छूटने लगता है और आपका स्मरण हो आता है तथा आंखों से अश्रुधार प्रवाहित होने लग जाती है।

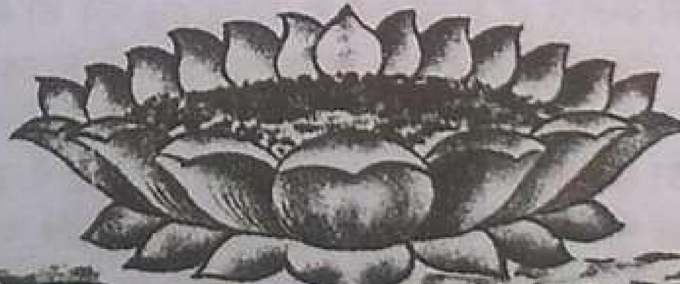
ऐसा लगने लगा है, कि बहुत कुछ ऐसा है, जो हम खो चुके हैं। ऐसा लगने लगा है, कि कुछ खालीपन है। ऐसा लगने लगा है, कि यह सारा जीवन व्यर्थ है, जब तक आपकी सामीप्यता, आपका माधुर्य, आपका आनन्द प्राप्त नहीं होगा, तब तक यह सब बेमानी है, व्यर्थ है, निष्प्रयोजन है। आपके बिना जीवन की कल्पना तो निरर्थक है ही, किन्तु इस भाव को व्यक्त करने के लिए हमारे पास ऐसी कोई शब्द राशि नहीं है, क्योंकि यह शब्दों से अभिव्यक्त करने की अवस्था नहीं है, इसे तो हृदय की भाषा से जाना और समझा जाता है। हम गृहस्थ शिष्य आपसे कितना प्रेम करते हैं, इससे आप परिचित हैं, फिर भी बीच में दुर्भाग्य की जो सीमा रेखा खिंच गई है, उसे कैसे मिटाया जाए जिससे हम आपके और निकट आ सकें।

ये सिद्धाश्रम स्थित योगी, ऋषि तथा संन्यासीसौभाग्यशाली हैं, कि वे जी भर कर आपको देख तो लेते हैं, आपके पास बैठ तो सकते हैं, आपसे बातचीत तो कर सकते हैं, आपका साहचर्य तो प्राप्त कर सकते हैं, हम आपके साथ ही साथ उनको भी नमन करते हैं।। ६४।।



॥ ७०॥

अहो धन्यं देवा तव चरणसेवा–मुपगताः
परम् ब्रह्मर्षित्वं गतमपि उदारं च ऋषयः ।
स्व सौभाग्यं श्रुत्वा परिजहति ते तापस फलम्
त्वदीयं दिव्यं तत् परम परमं दर्शन मिदम् ॥



हे प्रभु! पहली बार हमने यह जाना, कि विरह क्या होता है। आज तक शास्त्रों में, पुराणों में यह पढ़ा था, यह अनुभव किया था, कि गोपिकाएं कृष्ण के साथ–साथ विचरण करती रहती थीं, उनके एक संकेत पर अपने आप को लुटा देने के लिए बेताब होती थीं, परन्तु पहली बार जाना, कि वे क्यों कभी–कभी व्यथित और भावशून्य हो जाती थीं।

पहली बार यह अनुभव किया, कि इन साधिकाओं के पास अत्यधिक सौन्दर्य, यौवन, तरुणाई और सर्वश्रेष्ठता है, उसके बावजूद भी उनकी आंखों में आंसू झिलमिला रहे हैं, उनके आंसू आपके लिए समर्पित हैं, उनके आंसुओं में आपकी ही छवि स्पष्ट झलक रही है, उनके हृदय पर आपका प्रतिबिम्ब है, उनके सौन्दर्य में आपकी ही सुगन्ध प्रवाहित है, उनके रोम–रोम से आपके नाम की ही ध्वनि गुंजरित होती है, उनकी प्रत्येक धड़कन केवल मात्र आपके लिए ही है।

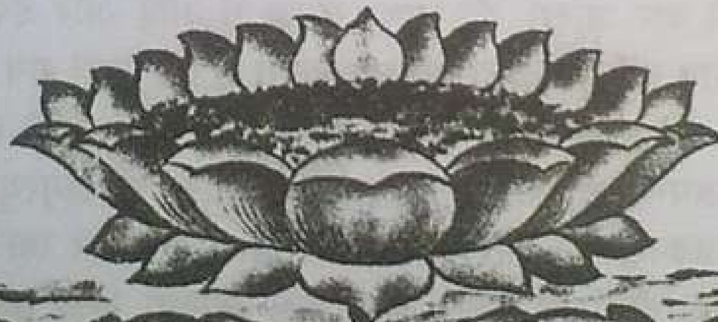
पहली बार यह अनुभव किया, कि अनेक साधना सम्पन्न साधक भी कातर नेत्रों से आपकी ओर ताकते रहते हैं।

वास्तव में ही आपने हमें पहली बार विरह सिखाया, पहली बार मिलन सिखाया, प्रेम सिखाया, आनन्द सिखाया, पहली बार अश्रुकण की व्याख्या सिखाई, भाव–विह्वल होना सिखाया, पहली बार जीवन का मर्म समझाया पहली बार हृदय की भाषा को अनुभव किया, पहली बार आंखों की भाषा समझ में आई और इसीलिए हम सब अपने आप को कृतकृत्य अनुभव करते हैं। हे प्रभु! हम भी समाज और परिवार की बंधी बंधाई लीक पर चल रहे थे, आपने हमारा हाथ पकड़ कर अपनी शरणागति प्रदान की, मृत्यु से अमृत्यु की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त किया। अभी तो हमारे ज्ञान चक्षु खुलना शुरू हुआ था, कि अचानक आप सिद्धाश्रम गमन कर गए, ऐसा अचानक क्या हुआ। आज हम अपराध बोध से दबे जा रहे हैं। जाते हुए कुछ तो दिशा दे जाते, ऐसा लगता है, कि अब निराश्रयता के दलदल में हम दब कर काल कवलित हो जाएंगे।।७०।।



॥ ७१ ॥

अयं शिष्या संघः तव विरहितः नानुरमते
सखेदः देवेश क्षुभितक्षुभितं चात्र भ्रमति ।
इदानीं त्वां द्रष्टुं स्थिरतर प्रयासं प्रथयति
सदा सिद्धै ध्र्येयः कृतयतु च तत् पावयतु च ॥



हे गुरुदेव! अब हम इस तुच्छ जीवन को छोड़ना चाहते हैं। स्वप्न या तन्द्रावस्था में, जब भी आप सूक्ष्म रूप में हमारे हृदय में आते हैं, तो कुछ क्षणों के लिए ही आते हैं, और जब तक हम आपको निहार कर संभलें, तब तक आप कहीं चले जाते हैं। हम तो जी भर कर आपको देख भी नहीं पाते, जब तक हम अपने आप को संभालते हैं, तब तक वह दिव्य चेतना समाप्त हो जाती है, और हम स्तम्भित से रह जाते हैं, हमारी वाणी अवरुद्ध हो जाती है, आंखें सजल हो जाती हैं, गला अवरुद्ध हो जाता है, और हम में इतनी क्षमता नहीं है, कि हम अपनी साधना के बल से आपको रुकने के लिए बाध्य कर सकें, परन्तु मन में अत्यधिक दुःखी और भावविह्वल होते हैं।

हम सभी के मन में एक ही बात होती है, कि कुछ क्षणों के लिए और प्रतिभासित हों, कुछ क्षण और आपको निहार लें, कुछ क्षण और आपके रूप का पान कर लें, क्योंकि वे क्षण अपने आप में अमूल्य, अद्वितीय और श्रेष्ठ होते हैं।

उन कुछ क्षणों से क्या होता है, वे क्षण तो ऐसे समाप्त हो जाते हैं, जैसे कोई एक तारा टूटा और समाप्त हो गया। ऐसा क्यों हो रहा है?

क्या आप हमें ऐसी आज्ञा नहीं देंगे, कि हम इस जीवन को छोड़कर आपके पास आ सकें? क्या आप हमें ऐसी आज्ञा नहीं देंगे, कि हम आपके पास कुछ दिन सिद्धाश्रम आ सकें?

क्या आप हमें ऐसी आज्ञा नहीं देंगे, कि हम आपके पास जीवन का आनन्द ले सकें?

मैं आपसे विनय करता हूं, कि हमें कुछ ऐसी शक्ति प्रदान करें, कि हम सशरीर, जहां भी आप हों, आपके पास पहुंच सकें। हम प्रच्छन्न रूप में ही सही, आपके पास पहुंच सकें, आपको देख सकें, तृप्त हो सकें और पुनः अपने जीवन के कर्तव्य में लौट सकें।

कृपा कर कुछ ऐसी आज्ञा हमें दे दें, जिससे कि हम अपने जीवन को धन्य कर सकें।। **७९** ।।



॥७२॥

कला वेदोद्गीता जगति विचिता षोडशविधा
त्वमेवं संपूर्णः चतुरधिक षष्ठि परियुतः ।
अहो दिव्यं दिव्यं मुनिजनयुतं भारतभुवं
मदाह्वानं श्रुत्वा परिवजतु देव निखिल त्वम् ॥



हे गुरुदेव! वेदों में कहा गया है, कि शास्त्रों का सारभूत तथ्य सोलह कला प्रधान होना है। पुराणों में उल्लेख है, कि साधना की पूर्णता सोलह कला से सम्पृक्त होना है। आप स्वयं सोलह कलाओं से साक्षात् विभूषित हैं, यदि आप कहने की अनुज्ञा प्रदान करें, तो आप सही अर्थों में चौंसठ कला पूर्ण हैं, आप जैसी विभूति, आप जैसा देवत्व तो हजारों वर्षों के बाद ही इस पृथ्वी तल पर आता है।

जब आप पृथ्वीतल पर थे, यह इस पृथ्वी का, इस पीढ़ी का और इस समस्त संसार का सौभाग्य था। यह अलग बात है, कि वे इस सौभाग्य को न समझ सके।

यह जरूरी नहीं है, कि एक सामान्य आदमी आपको पहिचान सके, और फिर आप स्वयं ही अपने ऊपर माया का आवरण डाले रहते थे, अपने आप को सामान्य बनाए ही रखते थे; ऐसे समय में हम क्या करते?

परन्तु जब हम सब कुछ नहीं समझ सके, तो इस सौभाग्य से वंचित होकर सांस लेने से क्या हो जाएगा? हमारी प्रत्येक सांस में आप हैं हमारे रोम–रोम में आप हैं, हमारे शरीर के कण–कण में आप व्याप्त हैं, हमारा सारा शरीर आपसे निर्मित है। कृष्ण भी आपके सामने अत्यन्त लघु हैं, क्योंकि आप सोलह कलाओं से भी आगे बढ़कर पूर्णत्व प्राप्त हैं।

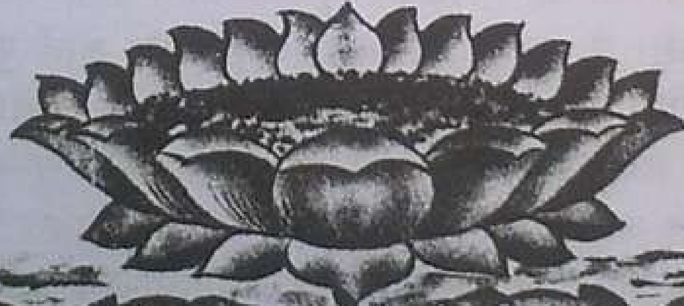
प्रभु! मैं अत्यन्त विह्वल, दुःखी और आर्त पुकार करता हुआ निवेदन कर रहा हूं, कि या तो आप हमें सिद्धाश्रम में आने की आज्ञा प्रदान करें या आप सिद्धाश्रम से वापस भू–लोक में चले आयें। हम आपसे नतमस्तक होकर, हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे हैं कि आपका सान्निध्य, आपका सामीप्य हमें चाहिए, अन्यथा हमारा सारा शरीर, सारा जीवन तिनके से भी गया बीता है।

हमें सिद्धियां, योग्यता, पूर्णता नहीं चाहिए, हमें वेद और पुराण से कोई तात्पर्य नहीं रह गया है, जब आप ही नहीं हैं, तो हमें अपने जीवन से कोई प्रयोजन नहीं रह गया है।।७२।।



॥ ७३ ॥

परं सिद्धस्त्वं वै परम गुरु नित्यं जगति च
तवाधीनं तेजः प्रबलतम रूर्द्धिं विदहने ।
इदानीं श्रूयन्ते बहुविध पुरा प्रोक्तं कथाः
त्वमेकाकी सर्वं क्षुभित क्षुभितम् आश्रम पदम् ॥



हे प्रभु! मुझे वह क्षण अब भी स्मरण है, आज भी उस दृश्य को स्मरण करके मेरा सारा शरीर रोमांचित होकर हर्ष से ओत प्रोत हो जाता है – जब आप किसी शिविर में दोनों ओर मर्यादित खड़े हुए साधकों के बीच से मस्त हाथी की चाल से मन्द–मन्द मुस्कुराते हुए, सजे हुए मंच की ओर आते थे। 'पूज्य गुरुदेव की जय' इस गगनभेदी जयकार से आपूरित मण्डप का सौन्दर्य और वेदध्वनि से आप का किया जाता हुआ स्वागत, बैकुण्ठ धाम में किया जाने वाले भगवान विष्णु के स्वागत जैसा प्रतीत होता था। आपके मुखमण्डल की आभा तथा अष्टगन्ध से सुवासित आप का सामीप्य कैसे भुलाया जा सकता है। आपकी वह करुणापूरित दृष्टि, आपकी वह छवि तथा साधकों का उल्लास आज भी मेरी आंखों के सामने साकार है। सभी साधक और साधिकाएं चकोर की तरह एकटक आपको ही देखते रहते थे, सभी आश्चर्य में डूबे हुए प्रेम के पारावार में सराबोर हो अपने सौभाग्य पर गर्व करते थे, इतराते थे आपको पाकर।

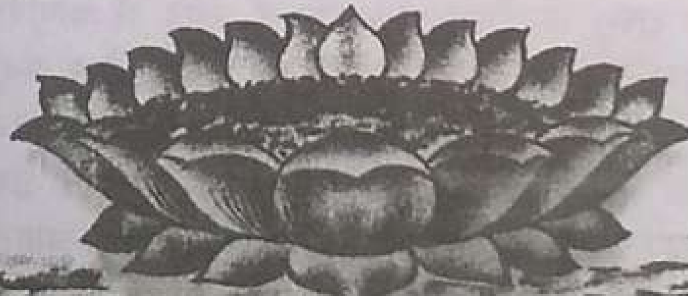
अब तो ऐसा लगता है, जैसे आप अपने साथ अपना सब कुछ ले गए हैं। साधकों के थिरकते पांव स्थिर होकर रह गए हैं। उल्लास और उमंग समाप्त हो गया है, ऐसा लगता है, जैसे साधकों की आंखें शून्य में कुछ खोज रही हैं। वह दृश्य हमारे सामने आज भी प्रतिबिम्बित है, और जब भी मैं उस दृश्य का स्मरण करता हूं, उस दृश्य को देखने का प्रयत्न करता हूं, तो मेरी आंखों से अश्रुधार प्रवाहित होने लग जाती है, मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठता है, स्वेद से आपूरित हो जाता है। क्या मैं इस जीवन में आपको पुनः उस रूप में देख सकूंगा? मैं इन स्मृतियों को वापिस उसी रूप में देखना चाहता हूं, हम सबकी तरफ से ऐसी ही इच्छा आपके सामने है। हम सब एक बार पुनः इस प्रकार के दृश्य को देखकर अपने आप को धन्य अनुभव करना चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप पुनः यह दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित करें।

ऐसा कहना मेरी धृष्टता हो सकती है, फिर भी किसी चांदनी रात में सिद्धयोगा झील के पावन तट पर स्फटिक शिला पर बैठे हुए किसी एकान्त क्षण में इन गृहस्थ शिष्यों का निश्छल प्रेम आपको उद्वेलित और विचलित अवश्य करेगा, क्योंकि इसी चांद के सामने सदैव साथ निभाने का आपने वायदा किया था।।७३।।



॥ ७४॥

परं दीना सिद्धिः सकल शुभदं त्वच्चरणयोः
तव स्पर्शं सिद्धिः परमपि च सौभाग्य जनकम् ।
यदेनं त्वं स्पर्शं कृतवति तदा सैव सुधनः
वयं धन्या प्रीताः तव चरण छाया-मुपगताः ॥



हे महामहिम! सिद्धियां आपके सामने व्यर्थ हैं। आप से जब ये गृहस्थ साधक साधना व सिद्धियों की याचना करते थे, छोटी–छोटी सांसारिक समस्याओं से आपके मूल्यवान समय को व्यर्थ करते थे, तो इनकी नासमझी पर तरस आता है।

जहां आपका स्पर्श ही साधना है, जहां आपकी कृपा–कटाक्ष ही सिद्धि है, जिस पर आप हाथ रख देते हैं, वह अपने आप में ही सिद्ध बन जाता है। इस तथ्य को भूलकर जब गृहस्थ साधक सिद्धियों के लिए मंत्र–जप करते हैं, तो उन मूढ़ों पर अत्यन्त ही क्षोभ और क्रोध होता है।

प्रभु! इन गृहस्थ शिष्यों को वे ज्ञान चक्षु दीजिए, जिससे कि वे आपको पहिचान सकें। उनके अन्दर वह भाव पैदा कीजिए, जिससे उनके लिए यह ज्ञान, यह माला, यह मंत्र जप सब कुछ बेकार हो सके। वे प्रेम के साकार पुज बन सकें, वे आपके चरणों से लिपट सकें, वे आंसुओं से आपके श्री चरणों को प्रक्षालित कर सकें और आपके दर्शन कर अपने जीवन को पूर्णता दे सकें।

प्रभु! समय तो व्यतीत हो गया और आप उनको भ्रमित करते रहे, माया का आवरण डाले रहे, और वे माया के वशीभूत होकर बहुत छोटी–छोटी चीजों से प्रसन्न होते रहे। कोई लक्ष्मी के लिए, कोई पुत्र के लिए, कोई सौभाग्य के लिए, जबकि यह लक्ष्मी, यह सौभाग्य, यह सुख, यह पूर्णता, यह सफलता, यह ब्रह्मत्व तो आपके पैर की एक छोटी सी उंगली के बराबर भी नहीं है।

जिस पर आपकी कृपा दृष्टि हो गई, वह अपने आप में ही ब्रह्मर्षि बन गया। जिस के सिर पर आपने हाथ रख दिया, वह अपने आप में ही देवता बन गया। जिसने आपको भुजाओं में भर लिया, वह अपने आप में ही सर्व सिद्धिप्रद बन गया।

यह ज्ञान, यह चेतना उनके हृदय में जाग्रत कीजिए, जिससे कि वे अपने जीवन के महत्व और मूल्य को समझ सकें, और आपके महत्व को अनुभव कर पूर्णता प्राप्त कर सकें।। ७४।।



॥ ७५ ॥

इदानीं वेदास्त्वां स्तुति–मुपगता च प्रतिदिवं
इयं लीलाभूमिः रचयति विधाता त्वधिगतः ।
अहोभाग्यं सत्यं सकल ब्रह्माण्डस्य नियतम्
अतो नाहं जाने तव चरण सेवां कृतविधिम् ॥



हे प्रभु! सही अर्थों में देखा जाय, तो यौवन की उत्पत्ति आपसे हुई है। सही शब्दों में कहा जाय, तो सौन्दर्य की उत्पत्ति आपसे हुई है। सौन्दर्य क्या है? इसकी परिभाषा आपकी दिव्य देह के दर्शन से ही भान हुआ। यौवन क्या है? यह आपकी तेजस्विता और आपके वक्षस्थल से ही अनुभव किया। पूर्णता क्या है? यह आपके पूरे शरीर को देखकर ही अनुभव किया, क्योंकि ये शब्द तब बने हैं, जब आपके सौन्दर्य, आपके पौरुष ने साकार रूप धारण किया।

आपकी प्रत्येक मुस्कराहट अपने आप में अद्वितीय है, उस मुस्कराहट में सैकड़ों–सैकड़ों रहस्य हैं, उस मुस्कराहट में साधुता है, उस मुस्कराहट में पवित्रता है, तेजस्विता है, पूर्णता है, उस मुस्कराहट पर तो प्रत्येक साधक–साधिका अपने आप को पूर्णता के साथ न्यौछावर करने के लिए तत्पर है।

प्रभु! मैं सौभाग्य का अर्थ नहीं समझ पाता, सौभाग्य का अर्थ पति नहीं होता, सौभाग्य का अर्थ तो आपको प्राप्त करना होता है। सौभाग्य का अर्थ जीवन नहीं होता, सौभाग्य का अर्थ तो आपके पास रहना होता है।

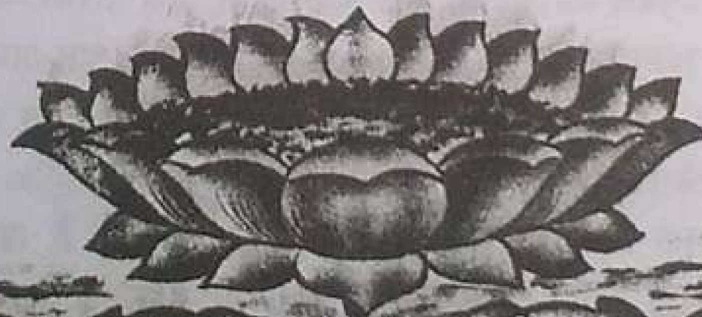
आपकी कृपा का अर्थ ही अपने आप में अलग है, जिसने भी आपकी एक मुस्कराहट प्राप्त की, जिसने भी आपकी सामीप्यता प्राप्त की, उसके जीवन की तुलना इस बैकुण्ठ में, इस संसार में किसी से हो ही नहीं सकती। जिसने आपको पहिचान लिया, वह अपने आप में ही योगीश्वर हो गया। जिसने आपको अनुभव किया, वह अपने आप में ही पूर्ण हो गया।

आपके लिए ही समस्त वेदों की रचना हुई है, आपके लिए ही ब्रह्माण्ड की रचना हुई है, आप स्वयं ही ब्रह्माण्ड के सूत्रधार हैं, तो मैं किन शब्दों से आपकी अभ्यर्थना करूं, सारे शब्द न्यून हैं, निष्प्रयोजन हैं, मैं आपके इस अद्वितीय स्वरूप को भक्तिभाव से प्रणाम करता हूं।। **७५** ।।



॥ ७६ ॥

परं पूतं देव गृहमिव त्वदीयं प्रियवपुः
विराजन्ते देवाः परमिद-मुदारेण सहिताः ।
कमाराध्ये देवं श्रुतिषु बहुदेवाः श्रुतधियः
इदानीं त्वं ध्येयः परमपि च गेयः प्रियकरः ॥



हे पूज्यतम नरश्रेष्ठ! आपके पूरे शरीर में ही समस्त देवताओं का निवास है, यह मैं ही नहीं यह पूरे ब्रह्माण्ड की वाणी कह रही है। आपके सिर पर साक्षात् भगवान शिव विराजमान हैं, आपके बाएं नेत्र में चन्द्रमा की ज्योति प्रतिबिम्बित हैं, आपके दाहिने नेत्र में सूर्य पूर्णरूप से ज्योतिर्मय है, आपकी नासिका में स्वयं ४६ पवन उद्घटित हैं।

आपके होठों पर स्वयं सौन्दर्य विराजमान है, आपके मुख में साक्षात् सरस्वती शोभायमान हैं, आपके चेहरे पर ब्रह्माण्ड की आभा और ब्रह्माण्ड स्वयं सुशोभित है, आपके कण्ठ में पूर्णता के साथ वाग्देवी स्थापित हैं, आपके चौड़े वक्षस्थल में हिमालय स्वयं सम्पूर्ण सम्पदा के साथ स्थापित है, आपकी दोनों भुजाएं इन्द्र से आपूरित हैं, आपका उन्नत उदर भुवनेश्वरी का आगार है, आपकी नाभि में स्वयं ब्रह्मा स्थापित हैं, आपके हृदय में शेषसायी विष्णु पूर्णरूप से स्थापित हैं, आपके गुह्य प्रदेश में स्वयं कामदेव अपने पूर्ण यौवन और सौन्दर्य के साथ स्थापित हैं, आपकी जंघाओं में यमराज स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं, आपके चरणों में समस्त तीर्थ समाहित हैं, आपके पृष्ठ भाग में स्वयं वासुकी सर्प आवेष्टित है, आपका सारा शरीर अपने आप में देवमय है, ऐसा मैं ही नहीं, अपितु जिसने भी आपके विराट स्वरूप का दर्शन किया है, उसने इसी प्रकार के रूप को देखा है।

हे!- प्रभु, ये समस्त देवता और देवियां जब आपके शरीर में ही समाहित हैं, तो फिर मैं कौन से देवता की आराधना करूं? किसका ध्यान करूं? किसकी पूजा–अर्चना करू? ऐसा कौन हो सकता है, जिसको मैं ध्याऊं? जब एक साथ ही सब कुछ आप में समहित है, जब आप ही सम्पूर्ण रूप से हमारे बीच विद्यमान हैं, तब आपको नमन करने का तात्पर्य ही समस्त देवताओं को नमन करना है। आपकी पूजा करना ही समस्त देवताओं की पूजा करना है। आपका ध्यान करना ही समस्त देवताओं का ध्यान करना हैं।

आप देवाधिदेव हैं, मैं सम्पूर्णता के साथ आपको हृदय से नमन करता हूं।।७६।।



॥ ७७॥

किमेवं ज्ञेयं तद् बहु उपकृतं त्वं जगति वै
प्रसादं संव्यक्तं ललित ललितं प्रेम जनकम् ।
सदैतत् संलभ्यं परम-परमं च नयनयोः
परि प्लावं सौख्यं तव विरहितं प्रेमधिगतम् ॥



हे प्रभु! प्रेम क्या है? यह आपसे ही हमने जाना है, अभी तक तो प्रेम की सही ढंग से पहिचान ही नहीं हो पाई थी, प्रेम की सही ढंग से व्याख्या ही नहीं हो पाई थी, प्रेम को वासना का ही एक स्वरूप समझ लिया गया था। प्रेम का तात्पर्य था, विपरीत व्यक्ति के प्रति कामोत्तेजना, मगर आपने इस परिभाषा को ही बदलं दिया।

आपने प्रेम का तात्पर्य जीवन की उन्मुक्तता से स्पष्ट किया, आपने हृदय की आनन्द अवस्था को प्रेम की परिभाषा दी। आपने बताया, कि बिना प्रेम किये जीवन का उत्थान सम्भव नहीं है। आपने स्पष्ट किया, कि कुण्डलिनी जागरण का आधार ही प्रेम है, कर्म योग का पर्यायवाची शब्द ही प्रेम है, क्रिया योग का तात्पर्य ही प्रेम है, और यदि जीवन में प्रेम नहीं है, तो फिर जीवन का कोई अर्थ भी नहीं है, यदि जीवन में प्रेम नहीं है, तो फिर कोई मंत्र, कोई साधना, कोई योग, कोई दर्शन या कोई अध्यात्म नहीं है।

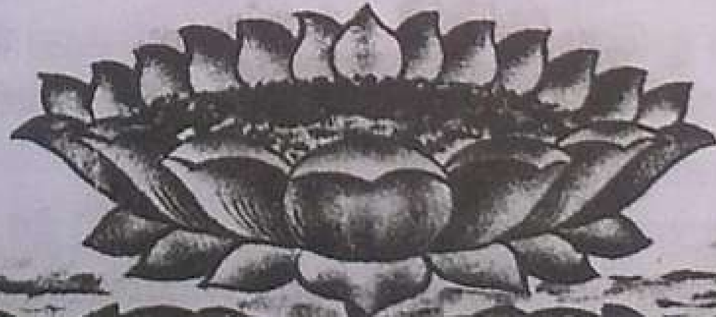
और पहली बार हम लोगों ने प्रेम के तात्पर्य को समझा, एहसास किया, कि संन्यासी होना एक अलग बात है, संन्यासी होकर प्रेम में पूर्ण बनना अपने आप में एक बिलकुल दूसरी बात है। मैं जानता हूं, कि आप प्रेम के आगार हैं, यदि प्रेम को एक आकार दिया जाय, यदि प्रेम को एक वास्तविकता दी जाय और यदि प्रेम को एक स्वरूप दिया जाय, तो आपके अलावा दूसरा हो ही नहीं सकता। संन्यासी भी आपको उतना ही प्रेम करते हैं, जितना कि साधिकाएं। पुरुष भी आपको उतना ही प्रेम करते हैं, जितना कि स्त्रियां। वृद्ध भी आपको उतना ही प्रेम करते हैं, जितने कि बालक। जड़, चेतन, जीव, प्रकृति सब आपसे प्रेम करने के लिए लालायित हैं, उद्यत रहते हैं।

एक साथ सबसे प्रेम करना, एक साथ सबको प्रेम में समाहित करना, एक साथ सबको अपनी अन्तरात्मा से प्रेम का प्रवाह देना कोई सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं है, यह तो वही कर सकता है, जो प्रेम का साकार पुंज हो, और ऐसा प्रेम तो बिरले लोगों को ही प्राप्त होता है।।७७।।



॥ ७८॥

उदन्तं बालार्कं सतत विमनः गुह्यति निजम्
उलूको न शान्तः रवि जनित सौख्यं न सहते ।
तदा तद् वैचित्र्यं गृह परिगताः साधक जनाः
सु चैतन्यं दिव्यं गुरुमपि न जानन्ति निखिलम् ॥



हे सर्वदेवमय प्रभु! ये गृहस्थ आपको पहिचान नहीं पाए, यह उनका ही दोष है। सूर्य तो ठीक पूर्व में उदित होता ही है, यदि उल्लू उसको नहीं देखे, तो यह उसका ही दोष है; हवा में सुगन्ध तो प्रवाहित है ही, यदि मनुष्य उसको न अनुभव करे, तो यह उसका ही दोष है; जीवन में तो प्रकृति नृत्य करती ही है, मगर यदि मनुष्य नहीं पहिचान सके, तो यह मनुष्य का ही दोष है।

वास्तव में ही आपने समस्त ब्रह्माण्ड से प्रेम किया है। हमने आपके साथ कई लोकों की यात्रा की है और देखा है, कि किस प्रकार से उस लोक के प्राणी आपको देखकर भाव–विह्वल हो जाते हैं, किस प्रकार से नतमस्तक हो जाते हैं, कितना उमंग, जोश और उल्लास उनके जीवन में आ जाता है।

एक क्षण में ही जैसे सब कुछ बदल जाता है, प्रकृति नृत्य करने लग जाती है और चारों तरफ आनन्द वृष्टि होने लग जाती है और स्वयं का भान ही नहीं रहता है।

केवल एक व्यक्ति के माध्यम से ऐसा होना सम्भव नहीं होता, यह तो अपने आप में अद्वितीयता है, अलौकिकता है, सम्पूर्णता है, श्रेष्ठता है। आप जैसी अद्वितीय विभूति को अपने बीच पाकर पूरा सिद्धाश्रम आज उल्लसित है, उमंगित है, आनन्द युक्त है।

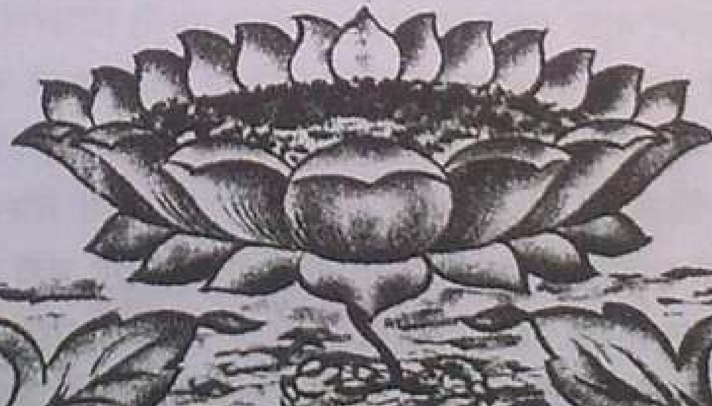
आपने कुछ समय के लिए पृथ्वी लोक में विचरण किया, दूसरे ग्रह से इस ग्रह पर कुछ समय व्यतीत किया, और इतने समय में जिन लोगों को भी आपका साहचर्य मिला है, जिन लोगों को भी आपकी सामीप्यता मिली है, जिन लोगों को भी आपका प्रेम मिला है, वास्तव में ही उनके भाग्य की सराहना तो स्वयं विधाता भी नहीं कर सकता।

मैं उन सब को साधुवाद देता हूं, उनके भाग्य की सराहना करता हूं, कि इस पृथ्वी लोक के प्राणी, जिन्होंने आपका प्रेम प्राप्त किया, आपका सान्निध्य प्राप्त किया, आपके पास बैठे, आपकी वाणी सुनी, आपके नेत्रों की करुणा, आपके नेत्रों के आनन्द से उल्लसित हुए, उनकी तुलना तो अपने आप में अनुपम है, अद्वितीय है, श्रेष्ठतम है।।७८।।



॥ ७९ ॥

समागयेः शुक्रग्रह सतत सौन्दर्य विधिषु
न चैवान्यं किंचित् प्रतिपदत समतां तन्मयं।
परं वै तत्रापि श्रुतिसुखकरं सारविभवः
अयं लोकः धन्यः प्रकृति विविधा चित्रं गता ।।



हे गुरुदेव! मैंने पहली बार यह अनुभव किया, कि पूरे ब्रह्माण्ड का श्रेष्ठतम ग्रह '**शुक्र**' है, क्योंकि जितना सौन्दर्य शुक्र ग्रह में है, उतना सौन्दर्य मैंने किसी अन्य ग्रह पर नहीं देखा;शुक्र ग्रह की भूमि को देखा, तो मैं ठगा सा रह गया-वास्तव में ही वैसा सौन्दर्य इस पूरे ब्रह्माण्ड में कहीं पर भी नहीं है।

मैंने अकेले में भी यहां यात्रा की थी, और दूसरी बार यात्रा मैंने आपके साथ की थी, किन्तु उस पहली बार की यात्रा और दूसरी बार की यात्रा में जमीन—आसमान का अन्तर है।

जब आप वहां पहुंचे, तो ऐसा लगा, कि प्रकृति झूमने लग गई है, और पूरा वायुमंडल नृत्य करने लग गया, कि "**परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानंद जी**" आये हैं।

शुक्र ग्रह के वासियों को यह होश ही नहीं रहा, कि वे क्या पहिने हैं और क्या नहीं पहिने हैं, जो कुछ था, वही पहिन कर दौड़ते हुए चले आये। उनकी आंखों में प्रेम था, उनकी आंखों में स्नेह था, उनकी आंखों में सामीप्यता की एक आतुरता थी, और उनकी आंखों में क्या—क्या भाव थे, उनको मैंने अनुभव किया है।

वहां पर सभी में एक उतावलापन था, कि कौन आपके चरणों को सबसे पहले स्पर्श करे? उस प्रकृति में भी उतावलापन था, कि कौन आपके ऊपर सबसे पहले पुष्प वर्षा करे? उस पवन में भी उल्लास था, कि किस प्रकार से वह आपको मधुर बहार से उमंगित कर दे?

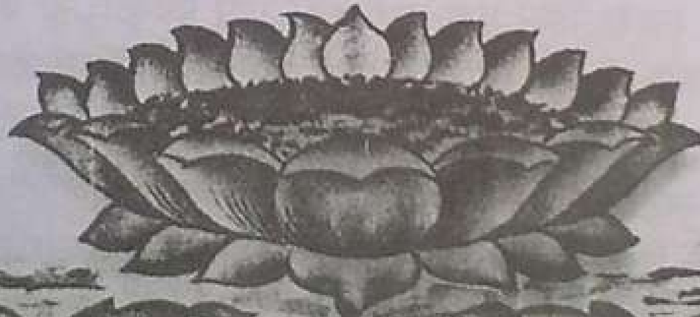
भूमि पर अपने आप पौधों का नर्तन हो रहा था और वहां की झील में जो लहरें नृत्य कर रही थीं, उसकी शोभा अवर्णनीय है। आप उस झील के किनारे खड़े होकर जिस प्रकार से मुस्करा रहे थे, वैसा क्षण तो मैंने जीवन में दोबारा देखा ही नहीं। कितना अद्भुत दृश्य होता है, जब आप वहां होते हैं, और कितना न्यून दृश्य होता है, जब आप वहां नहीं होते हैं।

केवल आपके होने और नहीं होने से सुख, वैभव व आनन्द में कितना अन्तर आ जाता है, यह मैंने अनुभव किया है।।**७९**।।



॥८०॥

सदानन्दः शान्तः कृत नृतवतः आश्रमपदे
त्वया सार्धं ज्ञात्वा पशुपति शिवः तत्र विलसत् ।
अहो दैव्यं दृश्यं कमल नयनः साग्रह गतः
समस्तं ब्रह्माण्डं परिगत-मुदारं नृतिमयम् ॥



हे प्रभु! यहां पर आपने जिन लोगों को साधनाएं दीं, साधना की बारीकियां समझाईं, साधना में पूर्णता दी, ब्रह्मत्व से पहिचान करायी, गूढ़ दीक्षाएं प्रदान कीं, वे अपने आप में ही पहली बार स्पष्ट हुईं, क्योंकि आप नित्य नवीन प्रयोग करते रहे हैं।

सही अर्थों में देखा जाय, तो आप नित्य नवीन हैं, सिद्धाश्रम को रूढ़ि ग्रस्तता से आपने मुक्त किया, और इस हेतु आपने प्रबल संघर्ष किया। यहां लोगों में जो जड़ता थी, जो केवल साधना व मंत्रों में ही सब कुछ समझ रहे थे, आपने उनको यह समझाया, कि उल्लास, हर्ष, नृत्य, उमंग और गायन यह सब कुछ भी जीवन का आवश्यक और अनिवार्य तत्व है। जब आप हमारे साथ नृत्य करते थे, तो अब उस सुख के आगे बैकुंठ प्राप्ति भी व्यर्थ है। जब हम आपके साथ नृत्य करते, तो भगवान शिव के साक्षात् दर्शन होते, जैसे कि वह स्वयं हमारे साथ नृत्य कर रहे हों। जब आप अपने प्रवचन हमारे सामने स्पष्ट करते, तो साक्षात् ब्रह्मा हमारे सामने स्पष्ट होते, जैसे कि वे ही बोल रहे हों। जब आप हमारे बीच उल्लास और उमंग की बातें करते, तो उस समय ऐसा लगता था, कि साक्षात् विष्णु हमारे सामने बैठे हों।

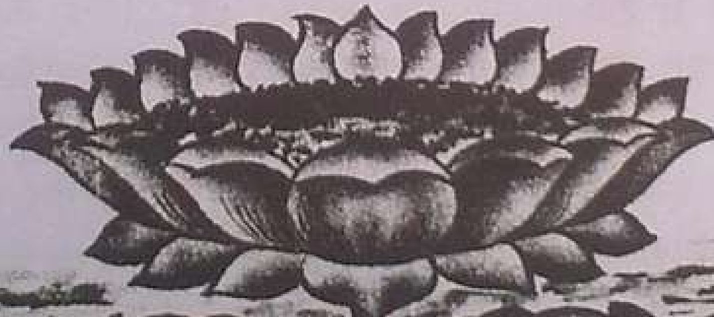
जब आप आनन्दमग्न हो कर नृत्य रत होते थे, तो सिद्धाश्रम में सभी देवता और ऋषि उपस्थित होते ही थे। आपकी मुदित भाव–भंगिमा से शंकराचार्य, बुद्ध, वशिष्ठ, विश्वामित्र, कणाद और पुलस्त्य हों, इन सब ऋषियों को जो नवीन व्याख्याएं, नवीन चिन्तन, नवीन ज्ञान, नवीन साधना पद्धति प्राप्त होती है, वह अपने आप में अद्वितीय है। एक प्रकार से देखा जाय, तो सम्पूर्ण युग को आपने अपने आप में समेट कर पुंजीभूत स्वरूप बना दिया है। मैं चाहे करोड़ों शब्दों का प्रयोग कर लूं, परन्तु फिर भी आपकी पूर्णता को अंकित नहीं कर सकता।

मेरा रोम–रोम आपके प्रति नतमस्तक बना रहे, ऐसा ही मैं आपसे आशीर्वाद चाहता हूं।।८०।।



॥८१॥

समिद्धं त्वां दिव्यं नहि समव जानन्ति निखिलम्
तवाधीना प्राणा गृह परिगतानां शिवतराः ।
गता सारूप्यं ते परमपि च सत्यं शुचवतः
प्रभो सर्वान् शक्तः क्षमयतु च करुणालय वशात् ॥



हे गुरुदेव! सिद्धाश्रम के समस्त योगी यदि मेरे गुरु भाई हैं, तो सही अर्थों में ये सभी गृहस्थ भी मेरे गुरु भाई ही हैं, क्योंकि इन्होंने भी आपसे दीक्षा ली है, मगर मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं, कि आप इतनी आसानी से इनको इतनी कठिन और उच्चकोटि की दीक्षाएं क्यों प्रदान कीं? मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं, कि दीक्षा लेने के बाद इनके अन्दर की वृत्तियां जाग्रत होने पर भी यह आपको क्यों नहीं पहिचान सके?

ऐसा कौन–सा क्षण आयेगा, जब इनके भाग्य उदय होंगे? ऐसा क्षण कब आयेगा, जब इनके सारे विकार समाप्त होकर पूरे ब्रह्मत्व को प्राप्त कर सकेंगे? इनके जीवन में वह क्षण कब आयेगा, जब ये अपने जीवन में प्रेम का संचरण अनुभव कर सकेंगे? ऐसा कौन–सा क्षण होगा, जब ये सब कुछ भूल कर, दुनिया को परे हटाकर आपसे सर्वस्व प्राप्त कर सकेंगे, आपको अपना सब कुछ अर्पित कर सकेंगे?

हो सकता है, कि यह विश्व विषैला हो, हो सकता है, कि यह वातावरण दूषित हो, ऐसा तो प्रत्येक युग में हुआ है, फिर इस युग में आप जैसे अद्वितीय विभूति को पाकर भी ये क्यों सौभाग्य से वंचित हो गए? ये हीरे को छोड़कर क्यों कंकड़ों को पाकर प्रसन्न हुए? ये क्यों भटक रहे हैं? गंगा में, यमुना में और दूसरी नदियों में स्नान करने से इनको क्या मिल गया? इन पलायनवादी समाज से डरे हुए अतत्वज्ञ संन्यासियों से इनको क्या मिल जायगा? उनके बीच में इनको क्या अनुभव हुआ? सूर्य को छोड़कर तारों से प्रेम करने से क्या होगा?

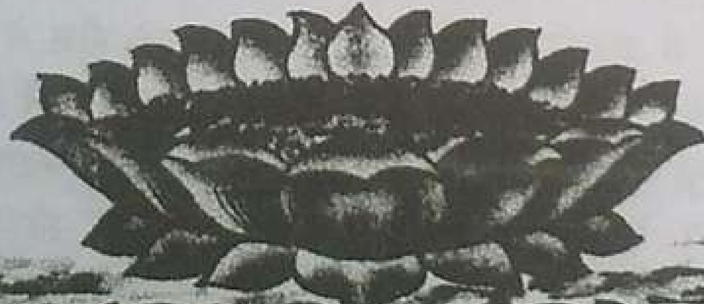
प्रभु! आप इन्हें अपनी तेजस्विता प्रदान करें, जिससे कि इनका जीवन धन्य हो सके, इनके ज्ञान–चक्षु जाग्रत हो सकें, इनके आत्म–चक्षु जाग्रत हो सकें, वे आपकी पूर्णता को पहिचान सकें और मर्यादा में रहते हुए आपसे प्रेम कर सकें।

आप इनको ऐसी तेजस्विता दें, कि इनको भी जीवन में पूर्णता प्राप्त हो सके, मैं ऐसा ही इनकी तरफ से आशीर्वाद का आकांक्षी हूं।।८१।।



॥८२॥

अहोभाग्यं तेषां तव च शिवरूपे समहिताः
इदानीं राजन्ते त्वयि परिगता आश्रमपदे ।
परं मायाबद्धा चिर प्रकृतिदीना गृहगताः
सदैवं स्वां मायां परिहरतु सौख्यं वितरतु ॥



हे प्रभु! आप सही अर्थों में मायाधारी हैं और पल–पल अपनी माया को विस्तारित करते रहते हैं। हो सकता है, यह मेरी धृष्टता हो, हो सकता है, यह मर्यादा के अनुकूल न हो; किन्तु यह सत्य है, कि ज्यों ही हम विराट्ता का अनुभव करने लगते हैं, त्योंही आप माया का आवरण डाल देते हैं, जिससे हम कुछ समय के लिए भ्रमित हो उठते हैं। हम तो गृहस्थ हैं, भ्रमित होंना स्वाभाविक था।

प्रभु! आप कृपा करें, नहीं तो इनमें से कोई ऐसा नहीं निकल पाएगा, जो आपकी माया के आवरण को छिन्न–भिन्न करके आपके विराट्ट स्वरूप के दर्शन कर सके।

गीता में अर्जुन ने जिस विराट्ट स्वरूप का दर्शन किया था, उस स्वरूप को संन्यासी शिष्यों ने देखा है, इन गृहस्थ शिष्यों को भी आप ऐसा स्वरूप दिखायें। आप इनके ऊपर से अब माया समाप्त करें, इनको अपनी वास्तविकता से परिचित करायें।

मैं जानता हूं, कि जिस पृथ्वी पर आप अवतरित हुए, वह विषैली है, वहां आलोचनाएं ही हैं, फिर भी जो सही अर्थों में साधक हैं, जो शिष्य हैं, उन पर से तो कम से कम आप अपनी माया का परदा हटा कर, विराट्ट स्वरूप में दर्शन दें। ऐसा कहने का मुझे कोई अधिकार तो नहीं है, मगर एक गुरु भाई होने के नाते ऐसा कहना मैं अपना अधिकार समझता हूं।

इसके बाद भी यदि वे गंगा के पास आकर भी उसमें अवगाहन करने से वंचित होते हैं, यदि मानसरोवर के पास आकर भी वे हंस नहीं बन पाते हैं, तो यह उनका ही दुर्भाग्य होगा।

प्रभु! आप उनके हृदय में उस प्रकाश को आपूरित कीजिए जिसके माध्यम से वे आपको पहिचान सकें, आपके वास्तविक स्वरूप को देख सकें।

मैं इन गृहस्थ साधकों की तरफ से आपको प्रणाम करता हुआ, जो मेरी भावना है, वह मैंने व्यक्त की है।।८२।।



॥८३॥

त्वमेवं माधुर्यं त्वं च निखिलं स्नेह निलयम्
त्वमेवं चैतन्यं त्वं च सकलाधार निभृतम् ।
त्वमेवं साफल्यं निखिल तपसाराधन विधौ
सदा सिद्धा देवाः परम दर्शन लालन पराः ॥



हे तपोनिष्ठ महायोगिन! जीवन का आनन्द आपके साथ रहने में है, जीवन की मधुरता आपके साहचर्य में बिताये हुए क्षण हैं, जीवन की पूर्णता आपके चरणों में नतमस्तक होने में है। आपके दर्शन करने के लिए ऊंचे से ऊंचा योगी, यति हिमालय छोड़कर सिद्धाश्रम में उन दिनों आ जाते हैं, जिन दिनों आप सिद्धाश्रम में होते हैं। वे अपनी साधना भंग करके, आपके प्रवचन सुनने के लिए और आपसे बातचीत करने के लिए लालायित हो जाते हैं।

वे यह कहते हैं, कि यह साधना सिद्धि तो बाद में भी हो जायेगी, पर "**श्री निखिलेश्वरानंद जी**" का साहचर्य और सत्संग तो विरले ही प्राप्त कर पाते हैं।

नारी सौन्दर्य को देखकर भी, जो अडिग बना रहे; ऐसा श्रेष्ठ योगी कठिनाई से ही प्राप्त होता है। कई योगी नारी के स्वरूप को देखकर विचलित हो जाते हैं, हमने विश्वामित्र, गौतम और कणाद के बारे में सुना है; मगर आपकी अडिगता, धैर्य, पवित्रता, स्नेह और आपकी अविचलितता किसी में हो ही नहीं सकती, क्योंकि आपकी आंखों में काम की एक हल्की सी लकीर भी नहीं आ पाती।

इतनी अडिगता तो अपने आप में एक अद्वितीयता है, फिर भी वे आपको देखने के लिए, आपके चरणों की धूल अपनी मांग में भरने के लिए प्रयत्नशील बनी रहती हैं।

वे केवल एक ही बात को अनुभव करती हैं, कि यह वह स्थान है, जहां पूज्य गुरुदेव बैठे हुए थे, यह वह स्थान है, जो अपने आप में पवित्र बन गया है, और उस पवित्रता को अपने शरीर पर रमा लेना भी अपने आप में श्रेष्ठता है।

यह पागलपन है या श्रेष्ठता है, इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता, मगर मैं उनका समर्पण, उनकी तीव्रता, नदी के प्रवाह से भी अधिक तीव्र अनुभव करता हूं।

ऐसी ही तीव्रता हम गृहस्थ शिष्यों में बनी रहे, ऐसे ही आशीर्वाद के लिए मैं आपके प्रति नतमस्तक हूं, आकांक्षी हूं। ।८३।।



॥८४॥

प्रभो! शून्यमेतं तव च रहितं लोकललितम्
मदीय माह्वानं रुदन परिपूर्ण विगलितं ।
त्वमीदानीं शीघ्रं प्रति व्रजतु हित्वा तृणमिव
सदागमनं चैवं परम रमणं प्राणजनकम् ।।



हे गुरुदेव! अब हमसे आपके बिना नहीं रहा जाता, ऐसा कहकर मैं शिष्य परम्परा को तोड़ना भी नहीं चाहता हूं। आपके बिना यह सब कुछ अधूरा सा लगता है, ऐसा कहकर मैं कोई न्यूनता अनुभव नहीं कर रहा हूं। यहां जितने भी साधक या साधिकाएं हैं, जितने भी शिष्य हैं, चाहे बालक या वृद्ध हों, स्त्री हों या पुरुष हों, आप उन सब के मनोभावों को पढ़ लीजिए, उनके मन में एक ही आकांक्षा है, कि आप हमारे बीच हों।

क्यों इन गृहस्थ शिष्यों की आंखों में आंसू नहीं आ पाते?

क्यों ये भाव–विह्वल नहीं हो पाते?

साधना–शिविर में और व्यक्तिगत रूप से मिलकर भी, आलोचनाओं को झेलते हुए आपको देखने के बावजूद भी; ये आपको नहीं पहिचान पाए। यदि वे आपको नहीं पहिचान पाए, तो यह युग की भ्रान्ति है, यह युग का दोष है, यह समय का दोष है, यह इस पृथ्वी का दोष है, जहां आप जैसा व्यक्तित्व पाकर भी वे उस सौभाग्य से वंचित हो गए।

हे प्रभु! आप वहां सिद्धाश्रम में जाकर, यहां की जलती आग में से निकलकर शीतलता का अनुभव करते होंगे। यहां रहते हुए आपकी पीड़ाओं को, आपके दुःखों को, इन ज्वालाओं में झुलसते हुए आपके शरीर को, यहां के तनावों के बीच रहते हुए आपकी वेदनाओं को देखकर भी ये गृहस्थ साधक अपने स्वार्थवश समझने का प्रयास नहीं किया।

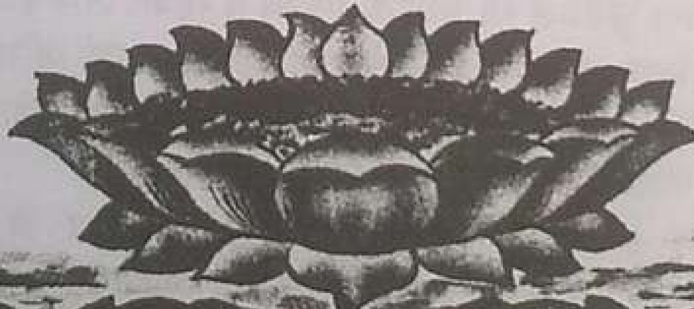
इतना दुःख, इतनी तकलीफ, इतनी वेदना आप क्यों सहते रहे, इसे समझ पाना मुश्किल था, क्योंकि गृहस्थ में रहकर आप इतने सामान्य बने रहे, कि प्रथम बार आपको देखने के बाद हर कोई भ्रमित हो जाता था, यह सोचने के लिए मजबूर हो जाता था, कि इतना महान व्यक्तित्व और इतना सामान्य कैसे हो सकता है।

आज हम सभी गृहस्थ साधक कातर स्वर से परम प्रभु सच्चिदानन्द जी से करबद्ध प्रार्थना करते हैं – गुरुदेव निखिल को एक बार पुनः पृथ्वी लोक में भेजें, अन्यथा इन गृहस्थ शिष्यों और साधकों की क्या दशा होगी, जो न सांसारिक स्थिति में सम्हल पाए, न आध्यात्मिक मार्ग में पांव रख पाए हैं। वे अधर में लटके दीन–हीन हो गए हैं। केवल आपकी कृपा दृष्टि की ही अपेक्षा शेष है।।८४।।



॥ ८५ ॥

तदासीत् तत् कालः परम रमणीयः सुखमयः
भवत्येषा रात्रिः परम परमा सौरभमयी ।
सदा सौख्यं चित्रं क्षण प्रतिक्षणं वर्धनपरं
परं मोदं धत्ते मधुर मधुरं तेऽपि निखिलं ॥



हे प्रभु! अब आप पुनः पृथ्वी लोक में आ जाएं, हम सब उस रास्ते पर आंखें बिछाए बैठे हैं, जहां पर आप अपने पावन चरण रखते हुए आ सकें। हमारी सारी धड़कनें उस रास्ते पर बिछी हुई हैं, जिस राह से आप आ सकें।

वह क्षण कितना आनन्द पूर्ण होगा, जब आप इस भारत भूमि में आकर हमेशा के लिए हमारे बीच होंगे; वे रातें कितनी सौन्दर्यमयी होंगी, जब आप हमारे बीच बैठे हुए बातें कर रहे होंगे; वे क्षण अपने आप में कितने मूल्यवान होंगे, वे दिन कितने मधुर होंगे, जब हमें आपकी हंसी, आपका अट्टहास सुनाई देगा।

वह क्षण हमारे लिए कितना सौभाग्यशाली होगा, जब आप साधना करा रहे होंगे, हमें ज्ञान दे रहे होंगे, माधुर्य बिखेर रहे होंगे, हम पर स्नेह की वर्षा कर रहे होंगे, हम उन क्षणों को कब प्राप्त कर सकेंगे? कब हम उन सौभाग्यमय क्षणों को प्राप्त कर सकेंगे?

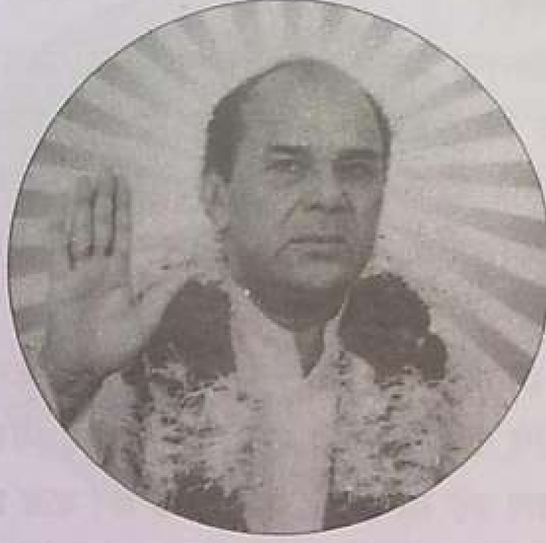
संन्यासी शिष्य तो पहले से ही पूर्णता प्राप्त हैं, आपके उस दिव्य स्वरूप से परिचित हैं, गृहस्थ शिष्यों को पहले से भी अधिक आपकी आवश्यकता अब अनुभव होने लगी है।

अब आप आ जाएं, यही हमारी स्तुति है, यही हमारी प्रार्थना है।

हे! प्रभु, मैं समस्त गृहस्थ शिष्यों की ओर से (इस समय भी वे सभी मेरे सामने खड़े हैं, उनकी डबडबाई आंखें मेरे सामने हैं) एक ही आवाज, एक ही प्रार्थना, एक ही दृष्टि, एक ही बिन्दु, एक ही विचार है, कि आप हमेशा–हमेशा के लिए हमारे बीच आ जाएं।

हम आपको पाकर धन्य और गौरवान्वित हो सकेंगे, हम ऐसी ही आपसे प्रार्थना करते हैं।

प्रभु! आप मुझे अभय दान दें, आप मेरी अवज्ञा पर ध्यान न दें, आप मुझे अवसर दें, कि मैं प्रत्येक क्षण आपके साथ रह सकूं, अपने जीवन को सार्थकता प्रदान कर सकूं। हमें विश्वास है, कि सिद्धाश्रम के सुखद और शान्त वातावरण में रहकर भी हमें आप नहीं भूले हैं। यही हमारा गौरवशाली पक्ष है, जिस पर हमें गर्व है, गुमान है।।७१।।



॥८६॥

अथायं तव देहः परम पवनं तीर्थ-मतुलम्
स्थितं सर्वं तीर्थं स्थिरतर मुदारं शुचिमयम् ।
तदेवं त्वां लब्ध्वा अनुभवति सर्वं गुणमयम्
अहो तीर्थं सर्वं प्रतिगमन मायसन परम् ॥



हे प्रभु! आप स्वयं अपने आप में मूर्तिमन्त तीर्थस्थल हैं। मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि ऐसा कौन सा तीर्थ है, जो आपके शरीर में विद्यमान नहीं है? आपके मस्तक पर हिमालय के समान उच्चता है, आपके आभामंडल में मानसरोवर स्थित है, जिसे देख कर ही अत्यन्त शीतलता, निर्मलता, पवित्रता और दिव्यता अनुभव होती है।

आपके नेत्रों को देखकर ऐसा लगता है, कि जैसे मानसरोवर में हंस डुबकी लगा रहे हों और मुक्त गगन में विचरण करने के आकांक्षी हों।

आपके हृदय–पटल पर गंगा और यमुना, गोमती और कावेरी, कृष्णा और गोत्रवती नदियों के साक्षात् दर्शन होते हैं। आपके गले में पुष्कर विद्यमान है। आपके नाभि प्रदेश में नर्मदा आविष्ट है, और आपकी जंघाओं में कृष्णा और अन्य नदियां स्पष्ट रूप से प्रवाहित होती हैं। हरिद्वार, काशी, उज्जैन और ये समस्त पवित्र स्थान मुझे तो आपके हृदय स्थल पर स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं, और आपके श्री चरणों में पूरा समुद्र आलोड़ित है।

एक ही स्थान पर समस्त तीर्थ और नदियां प्रवाहित हैं, यदि मैं उसमें अवगाहन नहीं कर सका, तो जगह–जगह भटक कर पवित्रता और दिव्यता कैसे प्राप्त कर सकूंगा?

जब आपमें ही समस्त तीर्थ समाहित है, तो मैं अलग–अलग तीर्थों में क्यों जाऊं?

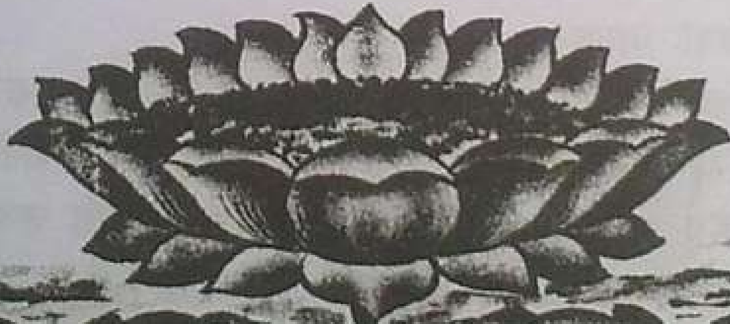
वे तो मूढ़ ही होंगे या जिनके आत्म चक्षु जाग्रत नहीं हुए होंगे, वे आपको साधारण मनुष्य समझते हैं, वे आपके शरीर में स्थित तीर्थ और देवताओं के दर्शन नहीं कर पाए हैं, यह उनकी न्यूनता है, यह उनका दुर्भाग्य है, यह तो उनका दोष है।

मैं नित्य आपके साथ ही रहता हुआ, आपके इस पवित्र शरीर को आनन्दित करता हुआ, आपकी सेवा करता हुआ, अपने जीवन का प्रत्येक क्षण सार्थक करना चाहता हूं, और यह सब आपकी कृपा से ही सम्भव है।।८६।।



॥८७॥

तदासीत् त्वं कृष्णः प्रतिधृत शरीरं श्रुतिमयं
महारास स्तत्र कृतवति शुभे द्वापरयुगे ।
इदानीं त्वं गेयः कृतवति महारास सकलैः
परं मोदं धत्ते परम सुखदं भारत भुवम् ॥



हे पुरुषोत्तम! उस दिन का मुझे भली भांति स्मरण है, जिस दिन एक शिविर में आपने रासलीला महोत्सव जैसा वातावरण उपस्थित किया था, उस चांदनी रात में हम उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब पुनः द्वापर इस पृथ्वी पर अवतरित होने को तैयार था। उस चांदनी रात में आपने समस्त साधिकाओं और शिष्यों के साथ जिस प्रकार से महारास सम्पन्न किया था, उस मस्ती से तो हम सब अभिभूत हो गए थे, हम सभी ही नहीं पूरा जनसमुदाय एकटक उस महारास को देख अपने को धन्य अनुभव कर रहा था।

ऐसा लग रहा था, कि आपके रूप में भगवान शिव साक्षात् नृत्य कर रहे हों, ऐसा लग रहा था, कि आप कई–कई रूपों में हैं, और आप प्रत्येक रूप में पूर्ण होते हुए प्रत्येक साधक के साथ हैं, प्रत्येक साधिका के साथ हैं, प्रत्येक अप्सरा के साथ हैं।

उस महारास में अनेक सिद्ध एवं योगीजन उपस्थित थे, और यह सब देखकर अनायास ही उनके मुख से निकल गया था– ''**निखिल**'' कई–कई रूपों में भी अपने आप में पूर्ण हैं, उन्होंने एक साथ ही सत्य, त्रेता और द्वापर युग को स्थापित कर एहसास करा दिया है, कि प्रत्येक युग को वापिस एक क्षण में उतारा जा सकता है।

चूंकि ये शब्द अपने आप में बहुत महत्व रखते हैं, सैकड़ों ऐसे व्यक्तित्व अवतरित हुए, जिन्होंने अपने जीवन को इस पृथ्वीतल पर सम्पन्न किया, मगर आप जितने विविध रूपों में हम लोगों के साथ रहे, वह अपने आप में अचरज भरा, आश्चर्यजनक तथ्य है। मैं नहीं समझ सकता, कि एक व्यक्तित्व इतने अधिक रूपों में भी हो सकता है; मैं आपके प्रत्येक स्वरूप का स्मरण करूं, ऐसी सामर्थ्य प्रदान करें।

प्रभु! ऐसे क्षण हमें बार–बार मिलें, हम बार–बार आपके साथ नृत्य करते हुए गतिशील हों, मैं ऐसी ही आकांक्षा मन में रखता हुआ आपको भक्तिभाव से प्रणाम करता हूं।।८७।।



॥८८॥

वयं शिष्या धन्या गत मनुचरत्वं निखिल ते
यतो नानारूपं प्रचितमपि त्रैलोक्य विभवं ।
विधत्ते त्वं नित्यं प्रणिहित नवं साधन विधिः
परं रूढ़िं त्यक्त्वा नव नवतरं दान कुशलः ॥



हे दयामय गुरुदेव! उस दिन सिद्धाश्रम में सिद्धयोगा झील की लहरों पर, जो आपने नृत्य महोत्सव रखा था, वह तो अपने आप में अद्‌भुत था, जो कल्पनातीत है।

हमने धरा पर नृत्य महोत्सव होते हुए तो देखा है, मगर उस दिन सिद्धयोगा झील स्वयं पृथ्वी बन गयी और उसके जल के ऊपर जो नृत्य महोत्सव रखा गया, उसमें तो हम सब ऋषियों ने भाग लिया, सभी उच्चकोटि के ऋषियों ने अपनी साधनाएं खंडित कर उसमें भाग लिया, देवताओं की पत्नियों ने और एक सौ आठ अप्सराओं ने भी उसमें भाग लिया, और आपने सब के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया, कि नृत्य केवल भूमि पर ही नहीं, सिद्धयोगा की लहरों पर भी सम्भव है।

लास्य क्या होता है?

जीवन की ऊर्जा और प्रवाह क्या होता है?

वास्तव में ही सिद्धाश्रम के महर्षि कितने भाग्यवान हैं, कि आपके विविध रूपों को निहारते रहते हैं, आपके अद्‌भुत स्वरूपों को परखते रहते हैं। आप नित्य नवीन प्रयोग करते रहते हैं, और उन परम्पराओं को तोड़ते रहते हैं, जो जड़ हैं, जो बासी हो गई हैं, जिनमें रूढ़ि आ गई है, जो अपने आप में चेतनाहीन हो गई हैं।

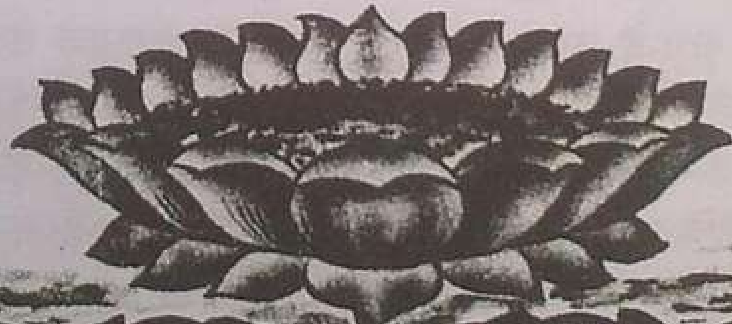
आपने यह सिद्ध कर दिया, कि साधना और तपस्या के साथ–साथ नृत्य व उमंग भी जीवन का एक आवश्यक तत्व है। उस समय आपको देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे आप सम्पूर्ण यौवन को समेटे हुए, कामदेव को अपने शरीर में धारण किए हुए नृत्य कर रहे हैं, ऐसे अलौकिक आनन्द की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। मैं तो हजार, लाख पत्रों पर भी उस दृश्य को नहीं उतार सकता, वह केवल आनन्द मग्न हो, अनुभव करने की ही क्रिया है, शब्दों में उतारने की बात ही नहीं है, उतारा ही नहीं जा सकता।

मैं समस्त गृहस्थ शिष्यों की ओर से प्रार्थना करता हूं, कि उन्हें भी आपके इस अलौकिक स्वरूप के दर्शन हो सकें।।८८।।



॥८९॥

महत् सौभाग्यं तत् तव चरण सेवां प्रकुरुते
परं सौभाग्यं तत् सततमपि सामीप्य मभजत् ।
भवन्तं संप्राप्य परिचरति सौभाग्य परता
महोच्चं तद् भाग्यं परि वदसि नाम्ना त्वमपि यम् ।।



हे प्रभु! सौभाग्य का अर्थ पति नहीं होता। सौभाग्य का अर्थ सुहाग भी नहीं होता। सौभाग्य का अर्थ है– जो भाग्य को श्रेष्ठता प्रदान करे, और आपको पाकर जो सौभाग्यता प्राप्त होती है, इससे ऊंचा सौभाग्य और क्या हो सकता है?

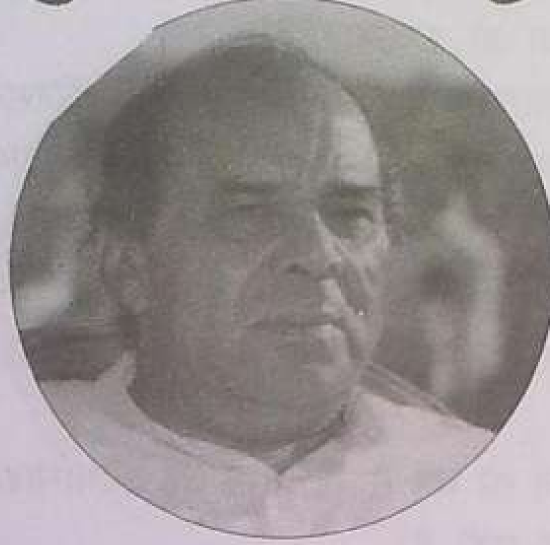
आप सौभाग्य के आकार हैं, स्वरूप हैं। जिसने आपको स्वीकार कर लिया, उसका जीवन ही बदल गया; जिसने आपको पा लिया, वह अपने आप में ही सौभाग्यशाली हो गया; चाहे वह प्रेमी हो, चाहे वह प्रेमिका हो; चाहे वह पत्नी हो, चाहे वह पति हो; चाहे वह स्त्री हो, चाहे वह पुरुष हो; चाहे वह बालक हो, चाहे वह वृद्ध हो; ये तो बहुत छोटे से शब्द हैं।

मूल प्रश्न तो यह है, कि क्या वह सौभाग्यशाली हुआ है, जिस पर आपकी दृष्टि पड़ी है?

वास्तव में जिसने अपनी मांग में आपकी चरण धूलि भरी है, जिसने आपको स्पर्श किया है, जिसने आपके होठों पर अपना नाम लिखा है, वह सौभाग्यशाली है। जिसने अपने हृदय की धड़कनों में आपको स्थापित किया है, जिसने अपने कलेजे पर आपका नाम अंकित कर लिया है, वह सौभाग्यशाली है।

और जो सौभाग्यशाली हैं, उसके लिए संसार के सारे सम्बन्ध तुच्छ, बेमानी और व्यर्थ हैं। मैं सामाजिक मर्यादाओं को नहीं जानता हूं, न ही रीति–रिवाजों को जानता हूं। मैं तो सिद्धाश्रम के उस चेतना पुंज को जानता हूं, जो जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य है।

आपके होठों से जिसका नाम उच्चरित होता है, वह हमारे लिए पूजनीय हो जाता है, दिव्य हो जाता है। हम सभी साधक और शिष्य सौभाग्यशाली होने की कामना करते हैं, और यह इच्छा रखते हैं, कि हमारा नाम आपके होठों पर हो; यह इच्छा है, कि आपकी कृपा–कटाक्ष हम पर पड़े, और वास्तव में ही वे गृहस्थ सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने यह सब कुछ प्राप्त किया है। हमें भी कभी अपने दर्शन देकर कृतार्थ करें, ऐसी ही प्रार्थना है।।८९।।



॥ १० ॥

त्वमेवं सर्वस्वं परम पुरुषः शान्त निखिलः
समस्ते ब्रह्माण्डे तव च निर्बाधं गति गतम् ।
समेषां वेदानां त्वमसि निखिल सारविभवः
प्रतीक्षामो नित्यं तव प्रतिगतं शान्तनिलये ॥



हे गुरुदेव! आप तो अन्तर्यामी हैं, जीवन के संचालक हैं, समस्त ब्रह्माण्ड में आपकी ही गति है; चाहे वह स्वर्ग लोक हो, चाहे इन्द्र लोक हो, चाहे पाताल लोक हो, चाहे सूर्य लोक हो। आपने अपनी साधनाओं के बल पर इस वैज्ञानिक युग में भी यह प्रमाणित कर दिया है, कि साधनाएं जीवन की सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण सिद्धियां हैं। आपने कठोर श्रम करके यह एहसास दिला दिया है, कि व्यक्ति अपने आप में ही पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

यद्यपि आपको इस बात की आवश्यकता नहीं थी, कि आप साधनाएं करें, क्योंकि जो स्वयं सिद्धि दाता हैं, जो स्वयं सिद्धि प्रदाता हैं, जो सिद्धि के आगार हैं, उसे सिद्धियों की क्या आवश्यकता है?

मगर आपने लीला करके हम सब शिष्यों को यह समझाने की चेष्टा की, कि साधनाओं से मन का संयम, आत्मा का संयम होता है, और संयम के उस पार तक आपने कार्य किया, जहां संयम स्वयं आपके सामने हाथ बांधकर खड़ा हो गया। कठोर श्रम से निरन्तर आपने इस जीवन में जो कुछ भी किया है, वह हमारी आने वाले पीढ़ियों के लिए पाथेय बनेगा, रास्ता बनेगा।

हम सब साधक और शिष्यगण आपका शत्–शत् अभिनन्दन करते हैं, आपका इन्तजार करते हैं, आपकी प्रतीक्षा करते हैं, और हम चाहते हैं, कि कुछ ऐसे कार्य, ऐसी नवीन विधियां, ऐसी गोपनीय साधनाएं आपके माध्यम् से प्रस्फुटित हों, जो सरल हों, सहज हों; जिनके माध्यम से जीवन ऊर्ध्वगामी बन सके, और साधारण व्यक्ति भी उन साधनाओं को सम्पन्न कर पूर्णता प्राप्त कर सकें।

आप स्वयं सही अर्थों में पूर्ण हैं, पुरुषोत्तम हैं, वेदों की ऋचाएं हैं और ब्रह्माण्ड का उज्ज्वलतम पक्ष हैं, कोई भी विशेषण आपके लिए न्यून है, क्योंकि शब्द अपने आप में आपके विराट व्यक्तित्व के सामने बौने हैं।

हम समस्त शिष्य केवल नतमस्तक होकर आपका अभिनन्दन ही करते हैं, कि शीघ्र ही पुनः इस भू–लोक में पधार कर हमें कृतार्थ करें, सौभाग्य प्रदान करें।। ९० ।।



॥ ६१ ॥

त्वमेवं प्रत्यक्षं धृतमय वपुः प्रेमधिगतम्
समस्तं ब्रह्माण्डं कलित ललितं सौख्य जनकम् ।
त्वदीयं तद् रौद्र मपर विरूपाक्षेण जनितम्
तदा तद् रूपं च कठिन कठिनं भीति सहितं ॥



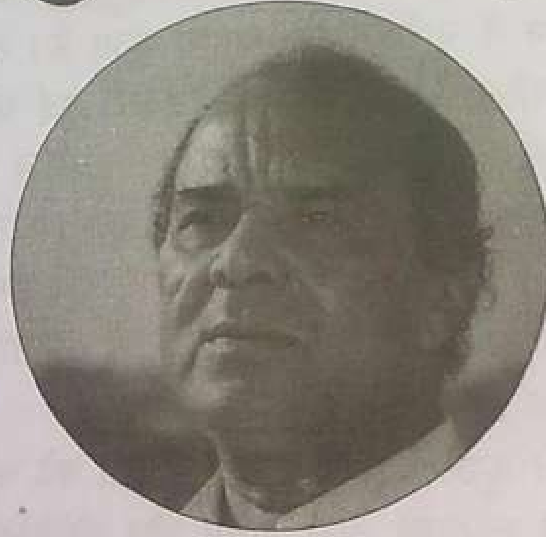
हे गुरुदेव! हमने आपके रौद्र रूप का भी सिद्धाश्रम में साक्षात् किया है, जब एक वयोवृद्ध संन्यासी जो कई हजार वर्ष की आयु प्राप्त हैं, एक अभद्रता कर बैठे, और उस समय जो रूप मैंने आपका देखा, वह आज भी मेरे मन में पूर्णरूप से समाया हुआ है। आपके रक्तिम नेत्र, आपका ज्वलनशील ललाट, आपकी बिखरी हुई जटाएं, आपके फड़कते हुए भुजदण्ड और सारा शरीर अग्निसम लाल सुर्ख देखकर ऐसा लगा, कि जैसे साक्षात् अग्नि देव ही रौद्र रूप धारण कर आपके रूप में खड़े हो गये हैं, आप स्वयं रुद्र बन गए हैं। हम एक निमिष के लिए भी आपको देख नहीं पाए। हम में इतनी क्षमता नहीं थी, कि आपके उस रौद्र रूप को देख सकें।

यद्यपि आपने कुछ भी शब्द उस संन्यासी को नहीं कहे, मगर उस समय जितने भी संन्यासी, साधु, योगी और योगिनियां, साधिकाएं और साधक उपस्थित थे, वे एकबारगी स्तब्ध रह गए; वे ही नहीं सारा सिद्धाश्रम स्तब्ध रह गया; ऐसा लगा, कि जैसे सूर्य चलते–चलते थम गया हो।

आपके उस क्रोधमय स्वरूप को देखकर उसके समस्त पाप, विकार, वासना समाप्त हो गई। एक तरफ रौद्र रूप और एक तरफ विगलित और रोते हुए संन्यासी का आपके चरणों में गिरा हुआ शरीर। इसके बावजूद भी आपने कुछ कहा नहीं, यह आपके जीवन की विराटता है।

यह आपके जीवन की विशेषता है, और इसके बाद पूरा सिद्धाश्रम ही अपने आप में शुद्ध, चैतन्य और निर्मल हो गया है, उस स्वरूप का बिम्ब प्रत्येक के हृदय–पटल पर पूर्णरूप से अंकित हो गया है, और किसी में हिम्मत नही है, कि वह थोड़ी सी भी अवज्ञा कर सके।

सिद्धाश्रम का इस प्रकार से संचालन आप जैसा व्यक्तित्व ही सम्पन्न कर सकता है, हम आपके उस रौद्र रूप को देखकर अपने आप में प्रसन्न हैं, और वास्तव में ही वे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने आपके उस रौद्र रूप के साक्षात् दर्शन किए हैं।। ९१ ।।



॥ ९२ ॥

पयः पारावारः करुणरस धारा नवसितः
क्षमा शीलो नाथः परिहरसि दोषातनमिदं ।
अहो! वात्सल्यं ते हृदि च समभावं सुजनकम्
परम् सौभाग्यं तदुभय विधगरिमा गुणमयः ॥



हे गुरुदेव! मैंने वह दृश्य भी अपनी आंखों से देखा है, जब आप बहुत प्रतीक्षा के बाद एक शिविर पधारे थे, और उस समय में तो हम सभी अत्यधिक भाव-विह्वल हो गए। ऐसा लगा कि जैसे हमारा नवजीवन लौट आया हो, ऐसा लगा कि जैसे वसन्ती बयार पुनः प्रवाहित होने लगी हो; ऐसा लगा, कि जैसे सारी प्रकृति झूमने लगी हो, और उस भावातिरेक में भाव-विह्वल होकर एक साधिका दौड़कर आपके सीने से लिपट गई थी, और उस समय आपने वात्सल्यमयी दृष्टि से उसके सिर पर हाथ रख कर उसे आशीर्वाद प्रदान कर, धन्य-धन्य कर दिया।

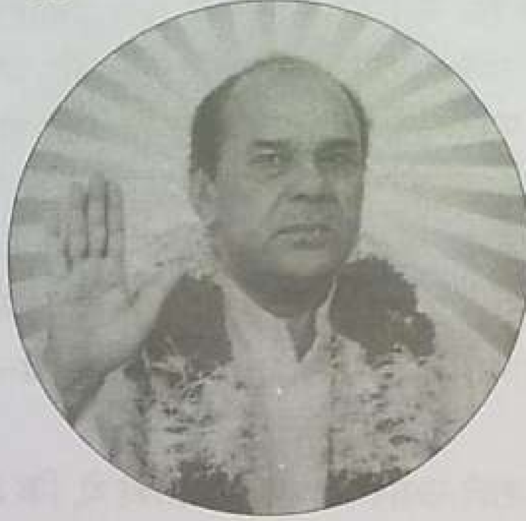
मैं यह जानता हूं, कि यह एक मर्यादा के विपरीत बात थी, मगर मैं यह भी जानता था, कि एक नारी की भाव–विह्वलता क्या होती है।

उस समय सारे उपस्थित साधक स्तब्ध थे, कि अब किसी समय कुछ भी घटित हो सकता है। ज्यों ही उस साधिका को चेतना हुई, वह छिटक कर दूर खड़ी हो गई और अपराध बोध से ग्रस्त नतमस्तक होकर खड़ी रही, और उस समय जो आपकी आंखों में मातृ वत्सल करुणा थी, जो क्षमा भाव था, वह अपने आप में ही दर्शनीय था।

आप कठोर से कठोर दंड देकर उसे श्राप भी दे सकते थे, मगर इतना कठोर पुरुष भी इतना नम्र हो सकता है, यह उस दिन पहली बार जाना। वहां पर आपने जिस करुणा, जिस दया, जिस प्रेम का प्रदर्शन किया, उससे यह स्पष्ट हो गया, कि आपके हृदय में करुणा का अथाह सागर लहरा रहा है।

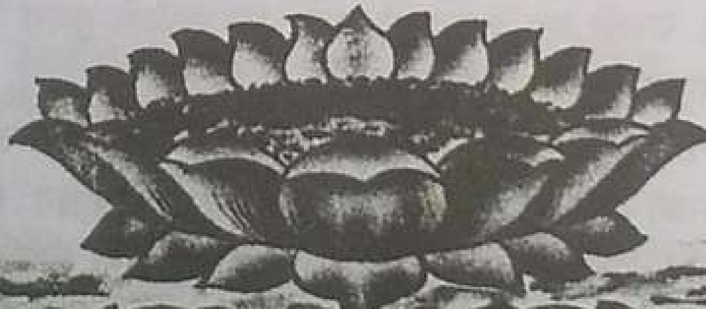
आपने मर्यादा में रहते हुए भी जिस करुणा से और सहज भाव से इस घटना को लिया, वह अपने आप में ही इस बात का द्योतक है, कि आप कठोर, दृढ़ निश्चयी और पूर्ण होते हुए भी अपने आप में क्षमावान्, दयावान्, ममत्वपूर्ण और स्नेहपूर्ण हैं।

मैं आपकी इस क्षमा, इस दया, इस करुणा, इस प्रेम और स्नेह के प्रति नतमस्तक हूं। हमें आपका यह प्रेम, आपकी यह करुणा, आपका यह स्नेह सदैव प्राप्त होता रहे, यही प्रार्थना है।। ९२।।



॥ ९३ ॥

न चैतत् सह्यं ते मुदित मुदितं आश्रमपदे
विदूरं किं सर्व तव प्रतिगतिः खेद जनकम् ।
न जानीमो मायां परम पदवी चात्र कीदृशी
किमर्थं शारण्यं परिपतति संतापयति च ॥



हे गुरुदेव! आपका सिद्धाश्रम जाना, हमारे लिए आश्चर्यजनक है, असह्य है, आप से अलग होने की संभावना से ही सारा शरीर कांप जाता है, आप हमेशा कहा करते थे, कि गृहस्थ शिष्यों के साथ कई वर्षों तक रहूंगा, अभी तो ये अपने पैरों पर खड़े भी नहीं हो पाए हैं और हाथ झटक कर आप चले गए। अभी तक तो शिष्य ही किसी न किसी स्वार्थवश अपना हाथ छुड़कार चले जाते थे, इस बार तो आपने ही शिष्यों का साथ छोड़ दिया है। ऐसा क्यों हुआ? हम गृहस्थ हैं, स्वार्थी हैं, पर अपनी समस्याओं के बोझ से दबे भी तो हैं। प्रभु! क्षमा करना मैं धृष्टता कर रहा हूं, फिर भी मेरी वेदना, मुझे इस तरह अभिप्रेरित कर रही है। अब हम इसी सोच में लगे रहते हैं, कि आपका हमेशा–हमेशा के लिए इस पृथ्वी लोक पर कैसे आवाहन करें?

अब तो ठीक ऐसा लगता है, कि जैसे शरीर से प्राणों को खींच करके कोई ले जा चुका हो; ऐसा लगता है, कि जैसे मांस से कोई चमड़ी को अलग कर चुका हो, ऐसा लगता है कि जैसे सर्वस्व समाप्त हो गया हो, और हम आपके कठोर अनुशासन के सामने कुछ बोल नहीं पाते, केवल टुकुर–टुकुर ताकते रहते हैं। हमारी आंखें सजल हो जाती हैं, हमारा गला अवरुद्ध हो जाता है।

हम यह समझते हैं, कि आप अपने कर्तव्यों से बंधे हैं, यह जानते हुए भी हमारे अन्दर यह करुणा, यह भाव–विह्वलता क्यों है? मगर यह सब आपकी प्रदान की हुई है, आपसे अलग होकर जीवन जीने की तो कल्पना ही नहीं कर सकते हम, इससे तो समाप्त हो जाना ज्यादा अनुकूल है; मगर ऐसा सम्भव नहीं है, इससे हम दुविधा में हैं।

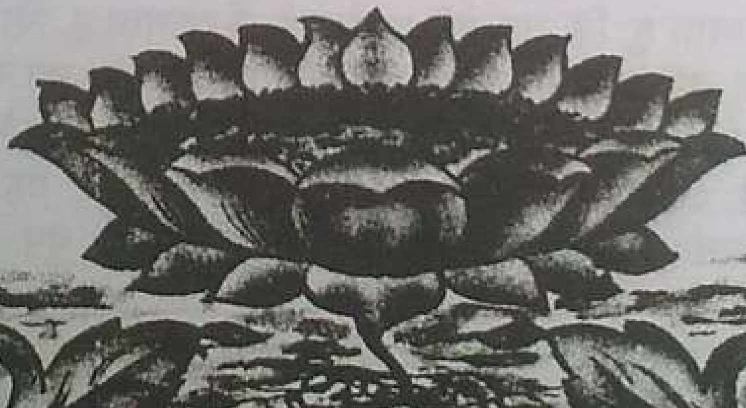
मैं जानता हूं, कि यह मेरी धृष्टता है; मैं जानता हूं, कि इन शब्दों का प्रयोग मुझे नहीं करना चाहिए; फिर भी आपके स्नेह को सामने रख कर मैं आपसे निवेदन करता हूं, कि आप अब पृथ्वी लोक में पुनः आ जाएं, हमारे बीच रहें, और हमें वह प्रेम, वह आनन्द, वह माधुर्य, वह स्नेह, वह करुणा, वह मार्गदर्शन दें, जिसकी वजह से यह संसार पुनः सही अर्थों में आनन्दमय और सुखद हो सके।

आप हमारे बीच में रहें, यह हमारा स्वार्थ हो सकता है, मगर यह हमारे जीवन की आवश्यकता भी है, क्योंकि हम इस निर्जीव शरीर को कब तक ढोते रहेंगे। मैं तो आपसे हाथ जोड़कर अश्रुपूरित विगलित कंठ से प्रार्थना ही कर सकता हूं, कि आप हमें मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए पुनः हमारे बीच अवतरित हों।। ९३।।



॥ १४ ॥

इमं आर्षीं ज्ञेयं परमपि च लोका नुचरितम्
विधत्ते सत् कार्यं गुरुतर विरोधेऽपि नितरां ।
यदा सिद्धे संघे कृतवति त्वया नूतन नवम्
तदासीत् संत्रासः अति हितकरः साहसमयः ॥

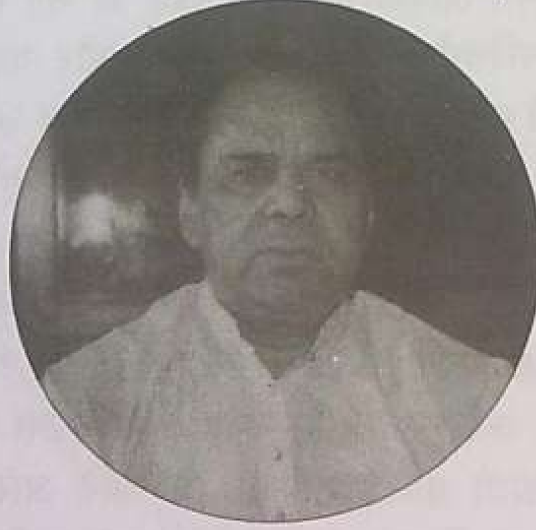


हे गुरुदेव! आपकी महिमा अनन्त हैं और हम सब शिष्यों के हृदय में अंकित हैं। मुझे वह दृश्य भी याद है, मुझे वह दिन भी भली भांति स्मरण है, जब आप पहली बार सिद्धाश्रम में आए थे, तब सारे संन्यासी लगभग आपके विरोध में खड़े हो गए थे, क्योंकि आप उसमें आमूलचूल परिवर्तन करना चाहते थे; और यह परिवर्तन उन लोगों को सह्य नहीं था। आपने सिद्धाश्रम दिवस पर उर्वशी को समझा कर, जो एक घंटे भर का नृत्य करवाया था, वह तो अपने आप में अद्वितीय था।

मगर सारे लोग सन्न से थे, सबकी आंखें गुरुदेव "**परम पूज्य स्वामी सच्चिदानंद जी**" की आंखों पर टिकी हुई थीं, कि अब वे किसी भी समय कुछ भी कर सकते हैं, मगर आपने उस दिन सारगर्भित शब्दों में यह समझाने की चेष्टा की, कि यदि आंख साफ है, मन में विकार नहीं है, तो फिर चाहे नृत्य हो, चाहे संगीत हो, वह अपने आप में गलत नही है, क्योंकि नृत्य भी जीवन का एक आवश्यक अंग है, गायन भी, वेद मंत्र भी, साधनाएं भी, सिद्धियां भी।

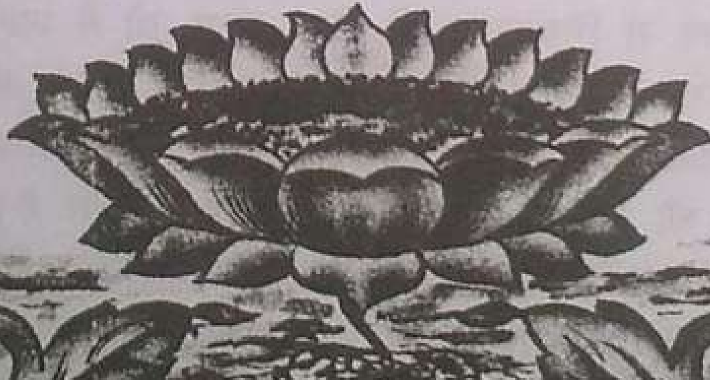
मैं देख रहा था, कि गुरुदेव का रक्तिम चेहरा और लाल आंखें धीरे–धीरे शांत होती जा रही हैं। आपने अपने शब्दों के अंत में कहा, "यह मेरी धृष्टता हो सकती है, कि मैंने इस पारम्परिक कार्य में एक नया अध्याय जोड़ा है, और इस अपराध के लिए यदि मुझे सिद्धाश्रम से निष्कासन भी दिया जाय, तो मैं जाने के लिए तैयार हूं, मगर मैं जहां तक समझता हूं, मैंने शास्त्र और मर्यादा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया है, फिर भी गुरुदेव सर्वोपरि हैं, और वे जो भी आज्ञा देंगे, वह मुझे सहर्ष स्वीकार है।"

अधिकतर ऋषि गुरुदेव "स्वामी सच्चिदानन्द जी" के शब्दों को सुनने के लिए आतुर थे, और जब गुरुदेव ने कहा – "निखिल जो कुछ कह रहा है, वह सत्य है, निखिल ने जो कुछ भी परिवर्तन किया है, वह शास्त्र मर्यादा के अनुसार किया है।" तो सभी आश्चर्ययुक्त हर्ष से विभोर हो गए।।९४।।



॥ ९५ ॥

परं पूतं सत्यं परम शुचि वेदध्वनि नुतम्
स चैतन्यं दिव्यं प्रकृति विकृतिं नात्रश्रयते।
इमं सिद्धं संघं परम सुखदं चेति रमसे
इमं लोकं धन्यं सकल शुचि सौभाग्यजनकम्॥



हे प्रभु! "यह माना कि सिद्धाश्रम अपने आप में अत्यन्त पावन एवं अद्वितीय है, रमणीय और श्रेष्ठतम है ; झूठ, व्यभिचार और असत्य के वातावरण से रहित है, वहां स्थित संन्यांसी और योगी आपको अत्यन्त प्रिय होंगे, क्योंकि वे सेवापरायण, निष्कपट और समर्पित हैं, इसीलिए उनके साथ रहने में समय व्यतीत करने में अनुकूलता प्रतीत हो रही होगी।

सिद्धाश्रम में शीतल, मन्द तथा सुगन्ध बयार बह रही होगी, उसके स्पर्श से आप शान्ति और चैतन्यता का अनुभव कर रहे होंगे। सिद्धयोगा झील की वह निर्मल और कलकल करती धाराएं निश्चित रूप से आपको कुछ क्षण बैठने के लिए, विचरण करने के लिए लालायित करती होंगी। रात्रि की चांदनी में कल्पवृक्षों के वे सुन्दर पुष्प आप के ऊपर बरस कर, आपका स्पर्श पाकर सौभाग्य अनुभव करते होंगे।

सिद्धाश्रम में आपके आने की प्रसन्नता में कुलांचे भरते हुए हिरण आपका स्वागत कर रहे हैं। पक्षियों के कुहूक से जो संगीत का वातावरण बन रहा है, वह आप को निश्चय ही हर्ष प्रदान करता होगा। शान्त निर्मल एवं आज्ञापरायण संन्यासी शिष्यों के निष्कपट, मर्यादित एवं प्रेममय व्यवहार से आप प्रफुल्लित होंगे। आपकी पावन उपस्थिति का एहसास सिद्धाश्रम को है, इसी से वह गौरवान्वित है, यशोमय हुआ है।

माना कि गृहस्थ शिष्यों में संन्यासी शिष्यों की तरह शुद्धता नहीं है, निर्मलता का अभाव है। आपके पावन प्रेम का प्रत्युत्तर देने की क्षमता नहीं है, सेवा की उस विधि से ये वंचित हैं, गुरु और शिष्य की मर्यादा से अनभिज्ञ हैं। किन्तु गृहस्थ जीवन के बोझ से दबे हुए, अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए अत्यन्त परेशानियों को ढोते हुए भी आपसे प्रेम करते हैं, चरणों में कुछ क्षण बैठने के लिए लालायित रहते हैं, सदैव चरण स्पर्श के लिए व्यग्र रहते हैं।

हे गुरुदेव! हमारी तो एकमात्र यही इच्छा है, कि आप हम लोगों के बीच पुनः आ जावें, हम एक बार फिर उसी खिलखिलाहट, उसी मस्ती, उसी उमंग, उसी जोश और उसी आनन्द का अनुभव कर सकें।।९५।।



॥ १६ ॥

परं काठिन्यं तद् गहनतम शास्त्रार्थ ग्रहणं
न किंचित् प्रायोज्यं विविधविध विद्या परिगतं ।
रहस्यं विज्ञातुं सकल विध तत्त्वार्थ ग्रहणे
सुधेयौ त्वच्चरणौ निखिल सुखदं सेवनविधिः ॥



हे करुणामय प्रभु! आपके साथ हमने जिन्दगी का महारास देखा है, जीवन का मर्म समझा है, साधनाओं की ऊंचाई को अनुभव किया है, साधना के गुप्त सूत्रों को समझा है, जो उपनिषद लुप्त हो गये थे, आपने उनका पुनरुद्धार करके एक नवीन युग को स्थापित किया है। प्राचीन दुर्लभ मंत्रों को पुनर्जीवित करके आपने उस वैदिक काल को स्थापित किया है, जो लुप्त हो चुका था।

संन्यास की उच्चता और गरिमा को आपने स्थापित किया है। मनुष्यता की पहिचान आपने दी है। प्रेम का वास्तविक स्वरूप क्या है और उसको किस प्रकार से निभाया जाता है? यह आपने हमें समझाया और पढ़ाया है।

जीवन का वास्तविक सौन्दर्य क्या है? इसको हम आपके चरणों में बैठकर ही सीख सके हैं। नेत्रों की निर्मलता और निस्पृहता हमने आपसे ही अनुभव की है। अडिग, अविचल और जुझारूपन के साथ–साथ किस प्रकार से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को पूर्णतः नियंत्रित करके सही अर्थों में देव पुरुष बना जा सकता है, इसको आपके जीवन से ही हमने सीखा है।

इन सब ज्ञान और तथ्यों को समझने के लिए पोथियों की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है आपके पास बैठने की, आपकी सामीप्यता की, आपके जीवन के एक–एक पृष्ठ को पढ़ने की, आपकी अन्तरंगता की, और जो कुछ आप कह रहे हैं, उसको पूर्णरूप से समझने की। वास्तव में ही मैं तो उनको सौभाग्यशाली कहता हूं, जो पोथी, पत्रों, पुस्तकों या ग्रंथों की अपेक्षा आपके जीवन का अध्ययन करने में विश्वास करता हों, जो आपके जीवन की एक–एक पंक्ति को हृदयंगम करता हो, वह अपने आप में समस्त वेदों, उपनिषदों, ज्ञान और चिन्तन को भली–भांति धारण कर लेता है।

पर हम मूढ़, अज्ञानी गृहस्थ आपको कैसे पहिचान पाएंगे? जितना ही आपके जीवन की गहराई में जाते हैं, उतना ही हमें लगता है, कि अभी तक तो हम बहुत अधूरे हैं।। ९६।।



॥ १७॥

मदीयोऽयं भावः कथमुप गमेत् स्वार्थ शमनं
यतो वै ते सर्वे किमपि परिलब्धु-मनुगताः ।
त्वमेकाकी सर्वं सकल परिवादमनुनतं
इदं स्मारं स्मारं हृदिव प्रविदारं भवति तत् ॥



हे प्रभु! यह निश्चित है, कि हम सभी गृहस्थ शिष्य कुछ मामले में अत्यन्त दोषयुक्त हैं, हम से अपराध हुआ है, क्योंकि हम स्वार्थी सिद्ध हुए हैं, पृथ्वीलोक में आप की उपस्थिति का मूल्यांकन करने में असमर्थ हो गए, आपके महत्व को नहीं समझ पाए, अपने ही जोड़–तोड़ में लगे रहे, आपकी माया के रहस्य को भेद नहीं सके और दिनों–दिन उस मार्ग को अपनाने लगे ,जो हमारे लिए उपादेय नहीं था।

यहां रहते हुए अकेले आप पूरे युग से जूझ रहे थे। आलोचनाओं, परेशानियों, बाधाओं और अड़चनों के बीच कहीं से किसी प्रकार का कोई सहयोग प्राप्त नहीं हो पाया। जो आप के समीप थे, वे भी स्वार्थ के वशीभूत थे, जिनको न शिष्यता का ज्ञान था, न प्रेम करने का ज्ञान था। आप जैसे अद्वितीय विभूति का यहां निरन्तर शोषण हुआ है, इसीलिए सिद्धाश्रम के संन्यासी शिष्यों ने कातर स्वर से आपका आवाहन करना किया, उनके आवाहन में मौलिकता थी, भाव थे, कातरता थी।

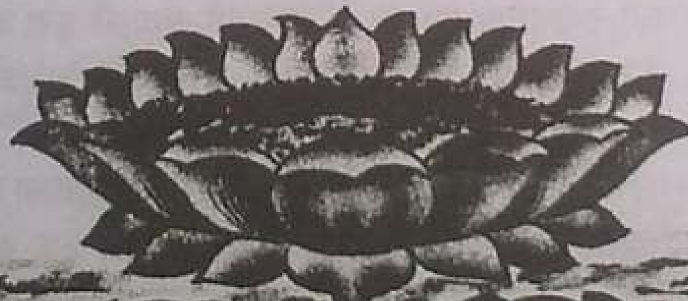
इस आवाहन को सुनकर परमश्रेष्ठ गुरुदेब कुछ क्षणों तक मौन रहे और पहली बार हमने देखा, कि उनकी आंखें नम हुई हैं। पहली बार हमने देखा, कि उनके चेहरे पर एक उदासी फैल गई है। पहली बार उनकी दृढ़ता में न्यूनता अनुभव की, मगर फिर भी उन्होंने तुरंत ही अपने आप को संभाल लिया और केवल इतना ही कहा – "अभी युग को उस की आवश्यकता है, और दूसरा कोई संन्यासी इतना जुझारूपन लेकर इस युग से संघर्ष नहीं कर सकेगा, अभी कुछ समय तक उसको वहां रखना आवश्यक है, फिर भी आपकी इस कातर प्रार्थना को स्वीकार करता हुआ जल्दी से जल्दी उस व्यक्तित्व को बुलाने की आज्ञा प्रदान कर दूंगा।"

वस्तुतः उस दिन दो अद्वितीय घटनाएं घटीं, पहला तो "परमहंस योगीराज सच्चिदानंद जी" की आंखों से निकलते हुए अश्रुकण और दूसरा यह आश्वासन, कि मैं उन्हें बहुत जल्दी ही सिद्धाश्रम बुला लूगा। ये दोनों ही क्षण अपने आप में अद्वितीय और महान थे। अविश्वास के इस क्षण में, किस मुख से आपका पुनः इस लोक में आने के लिए आवाहन करें, फिर भी आप करुणामय हैं, हम आपके ही हैं, चाहे जैसे हैं। हमारी कातर पुकार आप तक कभी न कभी अवश्य पहुंचेगी।। ९७।।



॥१८॥

त्वयातीतः कामः पशुपति परिश्राप ग्रहिलः
समस्तं सौन्दर्यं परिहृत जगच्च त्वयि श्रितम् ।
विशिष्टं चैतन्यं प्रकृति नितरां वै जनयति
इदानीं ब्रह्माण्डं नमति निखिलं त्वां गुणमयम् ॥



हे देवेश्वर! वास्तव में ही उस दिन कामदेव ने सही कहा था, कि "**परम प्रभु स्वामी निखिलेश्वरानंद जी**" केवल एक शरीर नहीं हैं, अपितु स्वयं अपने आप में पूर्ण इंद्रधनवा हैं, कामदेव हैं। मैं पूर्ण नहीं हूं, क्योंकि मुझे तो भगवान शिव का श्राप है, मगर 'निखिलेश्वरानंद' जैसा व्यक्तित्व तो कई हजार वर्षों के बाद इस पृथ्वी पर पैदा होता है, उनका सारा शरीर एक चुम्बकत्व, एक आकर्षण, एक लावण्य, एक ओज, एक साहस और सौन्दर्य का साकार पुंज है, जिनको स्पर्श करने से ही पूरे शरीर में एक रोमांच और आनन्द की रश्मियां विकीर्ण होने लग जाती हैं।

मैं तो इनके सामने अपने आप को बहुत नगण्य और तुच्छ समझता हूं, जब रति भी इनके विराट् सौन्दर्य को देखकर अभिभूत हो जाती है, जब सौन्दर्य की साकार प्रतिमा उर्वशी इनको देखकर विमुग्ध हो जाती है, जब मेनका इनको देखने के लिए बदहवास सी दौड़कर इनके चरणों से लिपट जाती है, जब दूसरी अप्सराएं मन की प्रबल इच्छाओं के वशीभूत होकर यही कामना करती हैं, कि इनका सामीप्य, इनका साहचर्य मुझे एक क्षण के लिए ही मिल जाय, तो यह अपने आप में इस बात का प्रतीक है, कि इनके सामने कामदेव कुछ भी नहीं है।

ऐसा कहकर मैं कोई अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं, मेरी जीभ में यह क्षमता नहीं है, कि वह उन शब्दों का वर्णन कर सके, क्योंकि मेरी जीभ के पास वे आंखें नहीं हैं, जो आपके सौन्दर्य को स्पष्ट कर सकें।

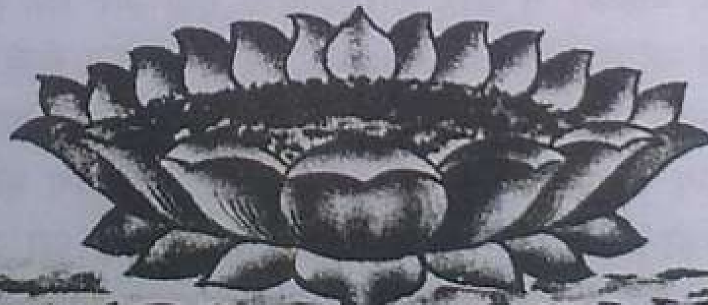
पुरुष में जो पौरुषता होनी चाहिए, जो वेग होना चाहिए, जो ताकत होनी चाहिए, जो क्षमता होनी चाहिए, जो आक्रामकता होनी चाहिए, वह आप में भरपूर है। एक व्याघ्र के समान आक्रामकता और एक शिशु के समान कोमल हृदय, ये दोनों एक साथ देखकर हम सब अभिभूत हो जाते हैं।

पुरुषोचित सौन्दर्य किसे कहते हैं? यह आपके द्वारा ही अंकित है।।९८।।



॥९९॥

त्वमेवं प्रत्यक्षं विमल सरितः ज्ञान-मनघः
इयं वाग्देवी ते वचसि सहिता पूर्ण मनसा ।
कथं वासः नित्यं प्रतिफल-मुदारं सह त्वया
न चेत्प्रीतं पुण्यं सकल विफलं जीवन धुरम् ॥



हे प्रभु! आप ज्ञान के साक्षात् स्वरूप हैं, जिस प्रकार आप तर्कों के माध्यम से ज्ञान की जो नवीन व्याख्या करते हैं, प्रत्येक शब्द को नवीन ढंग से जिस प्रकार संयोजित करते हैं, उसे देखकर हम सब साधक गण अभिभूत हो जाते हैं, क्योंकि मैंने अनुभव किया है, कि जब तक स्वयं ज्ञान वास्तविक रूप धारण करके बोलता नहीं, तब तक ज्ञान की सही पहिचान और परख नहीं हो पाती।

आपके शरीर में तो साक्षात् वाग्देवी विराजमान हैं, ज्ञान अपने आप ही आपके अन्दर समाहित है, सम्पूर्ण योग, मीमांसा, दर्शन चैतन्यता के साथ आप में उतरा हुआ है, इसलिए आपके प्रत्येक शब्द की व्याख्या अन्यतम है, अद्वितीय है। जिस तरीके से आप किसी मीमांसा को स्पष्ट करते हैं, वह इससे पहले न कभी स्पष्ट हो पाई है, और न इसके बाद होने की स्थिति है।

एक साथ इतने गुणों का समावेश तो किसी अद्वितीय विराट् व्यक्तित्व के पास ही हो सकता है।

हम धन्य हैं, कि आपका साहचर्य प्राप्त कर सके, आपके साथ विचरण कर सके।

हम धन्य हैं, कि आपको जी भर कर देख सके। हम धन्य हैं, कि आपका प्यार, आपका स्नेह, आपकी माधुर्यता हमको प्राप्त हो सकी।

मगर फिर साथ ही साथ हमारे भाग्य में जो विरह की रेखाएं खिंची हुई हैं, जो अलग रहने की स्थिति बनी हुई है, वह हमारे पूरे जीवन को अपने आप में अस्त-व्यस्त कर रही है।

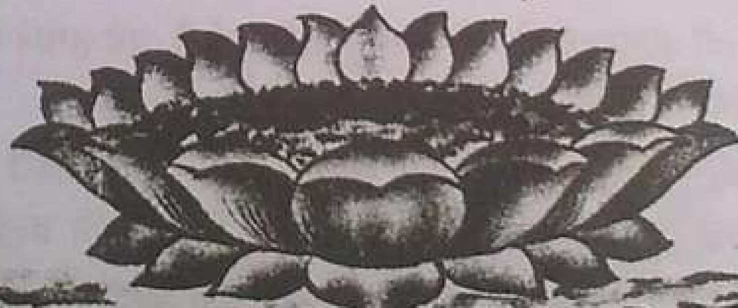
हम प्रत्येक पल, प्रत्येक क्षण आपके साथ रहना चाहते हैं, आपके होठों से निकले हुए शब्दों को सुनना चाहते हैं, आपकी प्रत्येक क्रिया को देखना चाहते हैं, समझना चाहते हैं और उस ज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित होते देखना चाहते हैं, जीवन का माधुर्य, जीवन का ओज अनुभव करना चाहते हैं।

प्रभु! ऐसा कब होगा, कैसे होगा? हम कुछ समझ नहीं पा रहे हैं, शायद प्रकृति ही हमारे खिलाफ है।। ४४।।



॥ १०० ॥

इदानीं न सह्यं चिर विरहजं जीवन-मिदम्
वरं मृत्युर्यत्र परम सुखदं खेद रहितम् ।
इदानी संतप्ता स्तव च प्रिय शिष्या प्रिय जनाः
इदं ध्येयं नित्यं प्रतिव्रजतु शीघ्रं निखिल त्वम् ॥



हे गुरुदेव! आप हमारी बात सुन नहीं पा रहे हैं। आप हमारी तरफ ध्यान नहीं दे पा रहे हैं, और हम सब साधक–साधिकाएं अपने आप में किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये हैं।

साधना का अजस्र भण्डार होते हुए भी हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं, हम अपने आप को समझा नहीं पा रहे हैं, अपने मन को धैर्य नहीं दे पा रहे हैं, और अधैर्यवान बनकर जीवन जीना, विरह के क्षणों में जीवन जीना कितना कठिन और दुःखदायी होता है, वह हम ही समझ रहे हैं।

हमारा सारा ध्यान, सारा चिन्तन सब एक तरफ खड़ा हो गया है, न यज्ञ में मन लगता है, न साधना हो पाती है, न मंत्र–जप हो पाता है और न तपस्या ही हो पाती है।

फिर भी हम विवश हैं, मैं स्वयं आपके दिव्य स्वरूप से परिचित होकर भी यदि इतना व्यग्र हूं तो मैं अन्य साधकों की, साधिकाओं की कल्पना कर सकता हूं कि वे कितने अधिक व्यथित, दुःखी, चिन्तित और परेशान होंगे, और उन सबकी समस्या एक ही है, कि आप हमारे बीच में नहीं हैं, उन सबका समाधान एक ही है, कि आप हमारे बीच हों।

और मुझे विश्वास है, कि यदि आप एक बार दृढ़ता के साथ **"परम पूज्य गुरुदेव स्वामी सच्चिदानंद जी"** को कह देंगे, कि अब मैं इन गृहस्थ शिष्यों के बीच नहीं रहना चाहता हूं, तो निश्चय ही वे आपकी बात को टालेंगे नहीं। अब आपकी हमें जरूरत है। अब आपकी हम अत्यधिक आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं।

प्रभु! गुरुदेव!! प्राणाधार!!! आप तो स्वयं जीवन की, रोम–रोम की पुकार सुन रहे हैं। आप हमें जल्दी दर्शन दें, ज्यादा समय सिद्धाश्रम में व्यतीत न करें और हमारे बीच रहें। हम सब अश्रुपूर्ण नेत्रों और आंसुओं की कलम से यह प्रार्थना आपके चरणों में प्रेषित कर रहे हैं।

हमें विश्वास है, कि आप हमारी इस कातरता को, हमारे इस विनय को, हमारे इस अनुनय को अवश्य ही स्वीकार करेंगे और विरह कातर इन शिष्यों को अपनाएंगें।।१००।।



॥१०१॥

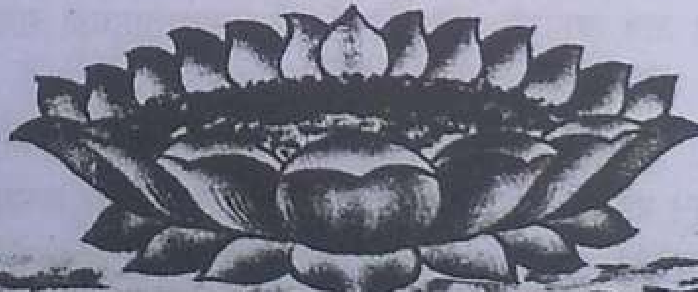
स्तोत्र वै च महिम्नं वै श्रेष्ठं प्रामाण्य एव च ।
स्वतः उत्पन्न अर्हेयं नात्र संशय संशयः ॥

॥१०२॥

न भक्ति र्न च वै स्तोत्रं न मंत्रं स्तोत्र एव च ।
सार तंत्रश्च मंत्रश्च मूलं भक्तिश्च पूर्णदः ॥

॥१०३॥

न स्तोत्र मंत्र न ज्ञानं न ध्यानं न जपं विधिः ।
स्वतः यः स्तोत्र तत्सिद्धिं चैतन्यं पूर्ण वाग्भवेत् ॥



यह स्तोत्र सभी स्तोत्रों में श्रेष्ठ है, यह महिम्न सभी उपलब्ध महिम्नों से उच्च है, इसका प्रत्येक अक्षर अपने आप में प्रामाणिक और चैतन्य है, क्योंकि उच्चकोटि की साधना और तपस्या कर ब्रह्म चेतना जाग्रत होने पर ये श्लोक स्वतः उद्घटित हुए हैं, अतः ये सारे श्लोक अपने आप में ही अद्वितीय और प्रामाणिक हैं।। १०१ ।।



न तो इससे बड़ा कोई स्तोत्र है और न इससे ऊंचा कोई भक्ति काव्य, न तो इससे बड़ी कोई साधना विधि है और न इससे बड़ा कोई मंत्रों से सम्बन्धित ग्रन्थ, यह स्तोत्र अपने आप में सम्पूर्ण मंत्रों का सार है, समस्त तन्त्रों का आधार है और समस्त साधनाओं का मूल स्वरूप है।। १०२ ।।



यदि कोई साधक किसी प्रकार का मंत्र–जप या साधना नहीं करता, तो इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि इस स्तोत्र के माध्यम से वह सब कुछ प्राप्त हो सकता है, जो हजारों– हजारों साधनाओं को करने से उपलब्ध होता है। इस स्तोत्र में स्वतः सिद्धियों की रश्मियां हैं, जिससे सारा शरीर साधनामय होकर चैतन्य बन जाता है और सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।। १०३ ।।

॥१०४॥

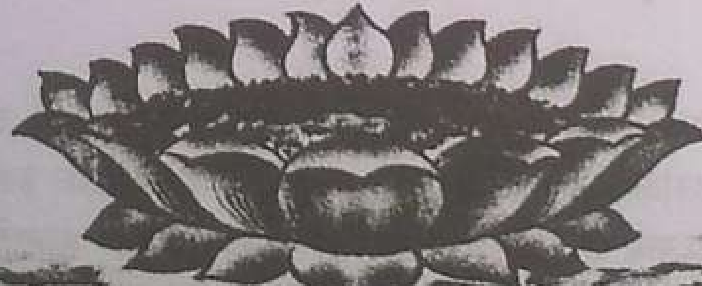
दीक्षा दानं जपस्तीर्थं ज्ञानं यज्ञं च व्यर्थ यः ।
यः स्तोत्र कौस्तुभं श्रेष्ठं अन्यत्र किं प्रयोजनम् ॥

॥१०५॥

न रोगं शोक दुःखं च राज्य कोपो न संकटः ।
एक वारं पठेत् स्तोत्रं पूर्ण सिद्धिश्च वाग्भवेत् ॥

॥१०६॥

धर्मार्थ काम मोक्षाणां यः स्तोत्रं वरदायकः ।
प्राप्यते पुत्र पौत्रं च धनं लक्ष्मी श्रियं भवेत् ॥



दीक्षा, दान, जप–तप, पूजा–पाठ, तीर्थ, व्रत–उपासना आदि सब व्यर्थ हैं, गंगा स्नान और हिमालय में मंत्र–जप करना व्यर्थ है, पत्तों से जीवन निर्वाह करना व्यर्थ है, जब हमारे पास **"कौस्तुभ मणि"** की तरह देदीप्यमान यह स्तोत्र उपलब्ध है, तो फिर इससे बड़ा व्रत, तीर्थ, उपासना या साधना क्या हो सकती है।। १०४।।



जो भक्त, साधक या शिष्य नित्य इस स्तोत्र का एक बार पाठ कर लेता है, उसके जीवन में कोई बाधा या परेशानी आती ही नहीं, वह समस्त प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है। राजकोप से छुटकारा पा लेता है, भयंकर बीमारी से मुक्त हो जाता है जीवन में किसी भी प्रकार का आकस्मिक और आसन्न संकट होने पर मात्र इसका पाठ करने से वह संकट दूर हो जाता है, यह ध्रुव सत्य है।। १०५।।



जो साधना करना चाहते हैं, जो सिद्धियों के इच्छुक हैं, जो देवी–देवताओं के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हैं, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा रखते हैं, उनके लिए तो यह वरदायक स्तोत्र है। मात्र इस स्तोत्र का पाठ करने से ही ये सब कुछ सहज उपलब्ध हो जाते हैं, यह प्रामाणिक है।। १०६।।

॥१०७॥

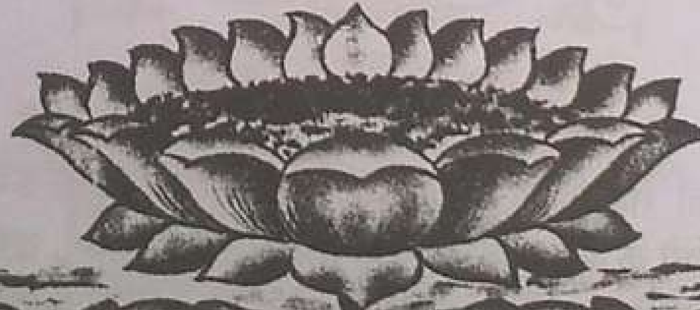
अधर्म पाप व्यभिचार श्रद्धायुक्तं पठेत् नरः ।
मुक्त पापं च दोषं च पूर्ण सिद्धि र्न संशयः ॥

॥१०८॥

गुरु पूजां करोति वै एक विंशतिकं पठत् ।
एकादशे दिने कुर्यात् पूर्ण सिद्धिं लभेत् नरः ॥

॥१०९॥

न तत्वम्य जानाहं न साध्यं ध्यान योग नः ।
पूर्ण सिद्धि भवेत् लाभं पठेत् स्तोत्र नरो तु यः ॥



कोई भी व्यक्ति पापी हो, अधर्मी हो, व्यभिचारी हो या पापरत हो, वह भी यदि इस स्तोत्र का श्रद्धा युक्त पाठ करता है, तो वह समस्त पापों से मुक्त होकर, सही साधक बन कर उच्चता की ओर अग्रसर हो जाता है।।१०७।।



यदि कोई भी आस्थावान् व्यक्ति सामने गुरु चित्र स्थापित कर, दीपक, अगरबत्ती आदि से पूजन करने के बाद इस स्तोत्र का ११ पाठ प्रतिदिन करे, और इस तरह २१ दिन तक पाठ करे, तो कठिन से कठिन और असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं, यह सत्य है।।१०८।।



इस स्तोत्र से बड़ी कोई साधना नहीं है और इस स्तोत्र से बड़ा न तो कोई तत्व है और न ब्रह्म ज्ञान, न तो कोई भक्ति है और न कोई चिन्तन, केवल मात्र इस स्तोत्र के पाठ करने से ही व्यक्ति अपनी मनोवांछित कामना पूर्ण कर लेता है।।१०९।।

॥११०॥

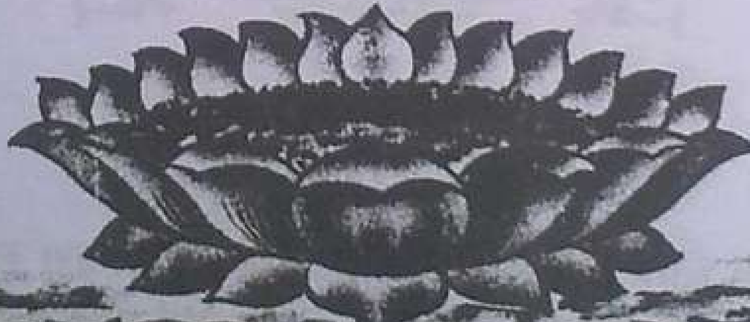
दिवसो पूर्ण सिद्धि वैं एक वारं पठंति यः ।
सकलं कार्य सिद्धिश्च पूर्ण सिद्धिश्च लभ्यते ॥

॥१११॥

लक्ष्मी शत सहस्त्रेश्च प्राप्यते पठ्तं नरः ।
रोगं शोकं च दारिद्र्यं नश्यंति धन सः श्रियं ॥

॥११२॥

ब्रह्माण्डोत्पन्न श्लोकं च अगर्भा स्तोत्र संजयेत् ।
सिद्ध सिद्धि र्व पूर्णं च अहेयं सिद्धि वाग्भवेत् ॥



जो नित्य प्रातःकाल उठ कर एक बार इस स्तोत्र का पाठ कर लेता है, उसका पूरा दिन और पूरी रात प्रफुल्लता, प्रसन्नता और सफलता से युक्त होती है।। ११०।।



इस स्तोत्र में लक्ष्मी तत्व का समावेश है, अतः मात्र इसका पाठ करने से ही जन्म–जन्म की दरिद्रता समाप्त हो जाती है।। १११।।



यह स्तोत्र मैंने ब्रह्म ज्ञान उदय होने पर अनायास ब्रह्माण्ड से उत्पन्न ध्वनियों और शब्दों के संयोजन से निर्मित किया है, अतः यह स्तोत्र स्वयं उत्पन्न और ब्रह्माण्ड के रहस्यों से सिद्ध है, जो कि सभी दृष्टियों से पूर्ण, श्रेष्ठ और अपने आप में समस्त उपलब्ध ज्ञान– विज्ञान में उन्नत एवं अद्वितीय है।। ११२।।